हिन्दी की क्षेत्रीय पत्रकारिता : समस्याएँ और संभावनाएँ

'राजस्थान पत्रिका', जयपुर के विशेष सन्दर्भ में
(1990–1995)

(Regional Journalism in Hindi : Problems and Prospects, A case study of 'Rajasthan Patrika', Jaipur (1990-1995)

(पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध)

प्रो. ज्योतिसर शर्मा
शोध–निर्देशिका

योगेश कुमार यादव
शोधार्थी

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2010

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
NEW DELHI-110 067, INDIA

Dated 5 /01 / 2010

DECLARATION

I declare that the work done in this thesis entitled **"HINDI KI KSHETRIYA PATRAKARITA : SAMASYAYEN AUR SAMBHAVANAYEN 'RAJASTHAN PATRIKA', JAIPUR KE VISHESH SANDARBHA MEIN (1990-1995)"** by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution.

YOGESH KUMAR YADAV
(Research Scholar)

5.1.10
PROF. (Smt.) JYOTISAR SHARMA
(SUPERVISOR)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. CHAMAN LAL
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS/JNU

पूजनीय मम्मी-पापा के लिए ...

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका

अध्याय : एक – **क्षेत्रीय पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास** 1–23

1.1 उद्‌भवकालीन परिस्थितियाँ

1.2 क्षेत्रीय अखबारों का विकास और विस्तार

1.3 किन लोगों ने थामी बागडोर (मालिक–सम्पादक)

अध्याय : दो – **क्षेत्रीय पत्रकारिता का वर्तमान दौर** 24–48

2.1 क्षेत्रीय पत्रकारिता बनाम राष्ट्रीय पत्रकारिता

2.2 उदारीकरण और वैश्वीकरण का दबाव

2.3 कार्यशैली (मालिक, संपादक, अन्य संपादकीय कर्मी)

2.4 खबरों का प्रस्तुतीकरण (आधुनिक तकनीक का प्रयोग, विषय वस्तु में बदलाव, अन्य)

अध्याय : तीन – **राजस्थान पत्रिका का क्षेत्रीय पत्रकारिता में योगदान** 49–77

3.1 पत्रिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व भौगोलिक विस्तार

3.2 पत्रिका का वैचारिक पक्ष

3.3 पत्रिका का वैशिष्ट्य

3.4 पत्रिका और व्यवसायिक हित

अध्याय : चार – **राजस्थान पत्रिका और क्षेत्रीय सरोकार** 78–113

4.1 पत्रिका और राजनीतिक सरोकार

4.2 पत्रिका और सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार (सती प्रथा, बाल–विवाह)

4.3 पत्रिका और क्षेत्रीय आंदोलन (सूचना अधिकार, किसान–मजदूर, दलित और स्त्री आंदोलन, विद्यार्थी हित व स्थानीय समस्याएँ – पानी, बिजली)

.... जारी

अध्याय : पाँच – राजस्थान पत्रिका : विविध आयाम 114–155
5.1 प्रस्तुतीकरण एवं साज–सज्जा
5.2 सम्पादकीय नीति
5.3 परिशिष्ट
5.4 स्थायी स्तम्भ
5.5 खेल, फिल्म और टेलीविजन
5.6 प्राकृतिक विपदा, आपदा एवं जन–सहयोग

अध्याय–छः – साहित्यिक हस्तक्षेप – इतवारी पत्रिका 156–181
6.1 पत्रिका और साहित्यिक विमर्श
6.2 राजस्थानी भाषा और साहित्य के विकास में योगदान
6.3 भाषागत वैशिष्ट्य

अध्याय–सात – क्षेत्रीय पत्रकारिता : सीमाएं और संभावनाएं 182–203
7.1 अतिस्थानीयता और निम्नवर्गीय प्रसंगों (सबाल्टर्न) के अध्ययन के संदर्भ में क्षेत्रीय पत्रकारिता का महत्त्व
7.2 संवाददाताओं के निजी हित
7.3 स्थानीय दबाव और विज्ञापन नीति

उपसंहार 204–213

संदर्भ–ग्रन्थ–सूची 214–220

.....

भूमिका

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रवेश के वक्त मुझे शोध के महत्त्व का कोई ज्ञान नहीं था और न ही शोध करने की इच्छा से मैंने यहां सन् 2001 में एम.ए. हिन्दी में प्रवेश लिया था। मेरा विचार था कि एम.ए. के बाद नेट परीक्षा पास करूंगा और किसी कॉलेज में लेक्चरर हो जाऊंगा। लेकिन एम.ए. की पढ़ाई के दौरान मुझे अकादमिक जगत में शोध के महत्त्व का ज्ञान होने लगा इसीलिए मैंने एम.ए. के तुरन्त बाद एम.फिल. – पीएच.डी. में प्रवेश ले लिया।

पीएच.डी. में आने के बाद शोध विषय का चुनाव करना मेरे लिए एक बड़ी चुनौती थी इस दौरान जेएनयू, दिल्ली विश्वविद्यालय, अखिल भारतीय जनसंचार संस्थान व साहित्य अकादमी आदि अन्य जगह होने वाली संगोष्ठियों में मैं नियमित भाग लेता था। पहले मैंने रघुवीर सहाय पर शोध करने का विचार किया और उनकी पुस्तकों का अध्ययन किया। सहाय जी के व्यक्तित्व के पत्रकारिता वाले पक्ष ने मुझे बहुत प्रभावित किया। सहाय जी एक संवेदनशील पत्रकार और ऊर्जावान कवि थे। देश–विदेश की घटनाओं पर उनकी टिप्पणियां पढ़ने को मिली। उनकी कोशिश घटनास्थल पर पहुँचने की होती थी और वहीं से कविता की विषय वस्तु भी उन्हें मिल जाती थी। उनकी पत्रकारिता से प्रभावित होकर मन में यह विचार आया की क्यों न पत्रकारिता पर शोध किया जाए। मन में यह आशंका थी कि मैं हिन्दी विषय का छात्र हूं और पत्रकारिता एक अलग विषय है, इस पर शोध करने की अनुमति भारतीय भाषा केन्द्र से मिलेगी या नहीं, इसी आशंका को मैंने प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल के समक्ष रखा। प्रो. अग्रवाल ने कहा कि आज हिन्दी का क्षेत्र विस्तार हो रहा है अतः हिन्दी पत्रकारिता, अनुवाद आदि को हम अपने विषय क्षेत्र में ला सकते हैं। उसी समय मैंने 'राजस्थान पत्रिका' पर शोध करने की इच्छा व्यक्त की क्योंकि मुझे पत्रिका के सामाजिक सरोकार अधिक व्यापक और लोककल्याणकारी लगते थे और जिन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया क्योंकि मैं पत्रकारिता को जनसेवा का जरिया मानता हूं। प्रो. अग्रवाल ने तुरन्त कहा कि यह एक अच्छा अखबार है और इस पर किया गया कार्य भी ऐतिहासिक होगा। फिर क्या था, मैंने जयपुर पहुँचकर अपना कार्य शुरू कर दिया।

इन्हीं दिनों पता चला कि प्रो. अग्रवाल का चयन संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में हो गया है। अब दूसरा शोध निर्देशक चुनने का समय आ गया। ऐसे में प्रो. ज्योतिसर शर्मा मुझे इस विषय पर सर्वाधिक जानकार शोध निर्देशिका लगीं और मैंने

उनसे इस बारे में बात की। प्रो. ज्योतिसर शर्मा के सकारात्मक रूख ने मुझे फिर नई ऊर्जा से कार्य करने में मदद प्रदान की। एम.ए. की पढ़ाई के दौरान से ही मैं प्रो. शर्मा के सम्पर्क में था और उनके व्यक्तित्व ने मुझे बहुत प्रभावित किया। उनके व्यक्तित्व में उदारता और सहृदयता के अलावा कुछ नया जानने व सीखने के प्रति ललक और जिज्ञासा पैदा करने का अद्‌भुत गुण मौजूद है। अब यह शोध कार्य प्रो. शर्मा के कुशल निर्देशन में चलता रहा और मैं लगातार अपनी शोध निर्देशिका से दिशा–निर्देश लेता रहा। 'राजस्थान पत्रिका' अपने मुख्य पृष्ठ 'य एषु सुप्तेषु जागर्ति' (हे ईश्वर सभी का कल्याण हो, सभी का जागरण हो) व सम्पादकीय पृष्ठ पर 'हो सकता है मैं आपके विचारों से सहमत न हो पाऊं फिर भी विचार प्रकट करने के आपके अधिकारों की रक्षा करूंगा', को आदर्श वाक्य के रूप में प्रयोग करती है। पत्रिका के सरोकारों व पत्रिका के लेखों की विविधता को देखकर इन विचारों के रक्षार्थ पत्रिका की निष्ठा पर कोई संदेह नहीं रह जाता है। पत्रिका राजस्थान की माटी की महक को अपने में समाहित किए हुए है। स्थानीयता में ही वह ताकत है जो इसे अधिक लोकप्रिय बनाती है। देशज शब्दों का इसमें खूब प्रयोग मिलता है, जैसे – पावणा, खम्माघणी, पधारो सा, राम–राम सा, पधारो म्हारे देस आदि। 'राजस्थान पत्रिका' पर यह पहला शोध कार्य है और साथ ही जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में भी क्षेत्रीय पत्रकारिता पर यह पहला शोध कार्य है।

"'हिन्दी की क्षेत्रीय पत्रकारिता : समस्याएं और संभावनाएं' 'राजस्थान पत्रिका' जयपुर के विशेष सन्दर्भ में (1990–95)" को आधार बनाकर किया गया शोध कार्य है। इस शोध कार्य में कुल सात अध्याय हैं। **प्रथम अध्याय** 'क्षेत्रीय पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास' है जिसमें हिन्दी पत्रकारिता के शुरुआती दौर और मिशनरी पत्रकारिता के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही, सरकारी दमन और प्रताड़ना के बावजूद किस प्रकार हिन्दी के पत्रकारों ने इसका विकास किया इसका भी वर्णन किया गया है। बाद में पत्रकारिता किस प्रकार बाजारवाद से प्रभावित होकर मालिक–सम्पादक के विरोधी हितों की अभिव्यक्ति का साधन बनती है, इसका विश्लेषण भी किया गया है।

दूसरा अध्याय : 'क्षेत्रीय पत्रकारिता का वर्तमान दौर' है जिसमें अखबार की कार्यशैली विशेष रूप से भूमण्डलीकरण के दबाव से हिन्दी पत्रकारिता किस प्रकार प्रभावित हो रही है इस पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी अध्याय में आधुनिक तकनीक किस प्रकार अखबार की साज–सज्जा के साथ ही उसकी विषय-वस्तु को भी बदल रही है इस पर भी शोध किया गया है। साथ ही क्षेत्रीय पत्रकारिता और राष्ट्रीय पत्रकारिता की भूमिका के विषय में भी शोध किया गया है।

अध्याय तीन : 'राजस्थान पत्रिका का क्षेत्रीय पत्रकारिता में योगदान' है। इसमें इस पत्रिका के प्रारंभिक दौर 'सांध्यदैनिक' विषय से लेकर आज तक जब यह अखबार एक बड़े संस्थान के रूप में विकसित होता चला आ रहा है कि स्थिति कि पृष्ठभूमि को विश्लेषित किया गया है। इसी अध्याय में पत्रिका का वैचारिक दर्शन और अन्य अखबारों से उसकी भिन्नता का भी शोधात्मक विवेचन किया है। साथ ही, पत्रिका के महत्त्वपूर्ण होकर उभरने के कारणों की जाँच–पड़ताल की गई है और आज के व्यावसायिक दौर में इस अखबार को अपने दायित्व निभाने में आने वाली समस्याओं आदि विषयों का विश्लेषण किया गया है।

अध्याय चार : 'राजस्थान पत्रिका और क्षेत्रीय सरोकार' है जिसमें राजनीतिक मुद्दों पर पत्रिका का नजरिया, संवैधानिक संस्थाओं की जरूरत और उनकी मर्यादा पर पत्रिका की चिंता को व्यक्त किया गया है। साथ ही, सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों जिसमें बालविवाह, स्त्रीशिक्षा, दहेजप्रथा, सतीप्रथा पर पत्रिका के दृष्टिकोण का मूल्यांकन किया गया है। संवैधानिक प्रश्नों – सूचना अधिकार की मांग, ओमबुट्समैन की अनिवार्यता, राष्ट्रभाषा के महत्त्व आदि पर पत्रिका की सजगता और दूरदर्शिता का विवेचन किया गया है। किसान–मजदूर, दलित–स्त्री और विद्यार्थियों की समस्याओं के समाधान में पत्रिका के योगदान को रेखांकित किया गया है। साथ ही स्थानीय स्तर पर पानी, बिजली, सड़क, टेलीफोन आदि समस्याओं हेतु 'पुकार' के माध्यम से प्रशासन पर दबाव डालकर लोगों का हित साधन किया गया है।

अध्याय पांच : 'राजस्थान पत्रिका : विविध आयाम' में पत्रिका की भूमिका विविधताधर्मी है जिसमें प्राकृतिक आपदाओं में उसके सहयोग का मूल्यांकन किया गया है। साथ ही पत्रिका के स्थाई स्तंभ, परिशिष्ट सम्पादकीय नीति, खेल, फिल्म आदि विषयों का मूल्यांकन किया गया है। **अध्याय छः** में इतवारी पत्रिका के माध्यम से पत्रिका के साहित्यिक गतिविधियों में योगदान और विभिन्न विमर्शों की चर्चा है। राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति के गौरवमय पहलुओं को पत्रिका ने प्रकाशित कर जन–जन के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। साथ ही पत्रिका के भाषागत वैशिष्ट्य पर भी चर्चा की गई है।

अध्याय सात : 'क्षेत्रीय पत्रकारिता की सीमाएं व संभावनाएं' में निम्नवर्गीय प्रसंगों के सन्दर्भ में क्षेत्रीय पत्रकारिता के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। क्षेत्रीय पत्रकारिता में स्थानीय खबरों का दबाव रहता है। साथ ही संवाददाताओं के निजी हित भी आड़े आने लगते हैं। इसके अलावा विज्ञापन और खबरों के प्रस्तुतीकरण में सामंजस्य लाना भी चुनौती भरा कार्य होता है। इन सब चुनौतियों से एक अखबार कैसे निजात पाता है का भी विश्लेषण किया गया है। अन्त में **उपसंहार** है जिसमें शोध–प्रबन्ध का निष्कर्ष दिया गया है।

इस शोधकार्य हेतु सर्वाधिक सहयोग प्रो. ज्योतिसर शर्मा से मिला। बीच के समय में प्रतिकूल स्वास्थ्य के बावजूद प्रो. शर्मा ने अपने व्यस्ततम समय में से मुझे समय दिया और इस कार्य को आगे बढ़ाया। मैं उनका तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूं और ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि वे अपनी सेवाएं निरंतर भारतीय भाषा केन्द्र और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय को प्रदान करती रहें। इस शोध कार्य में जो कुछ अच्छा बन पड़ा है वह प्रो. शर्मा का योगदान है और जो कमियां रह गयी हैं वह मेरी अपनी हैं जिन्हें अवसर मिला तो भविष्य में पूरा करने की कोशिश करूंगा।

इस शोध कार्य हेतु मुझे 'राजस्थान पत्रिका' की पाँच वर्ष की पुरानी दैनिक प्रतियों की आवश्यकता थी जिनकों आधार बना कर यह कार्य किया जाना था। इस हेतु मैंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, अखिल भारतीय जनसंचार संस्थान, साहित्य अकादमी और नेहरू मेमोरियल पुस्तकालय में खोजबीन की और मुझे निराशा ही हाथ लगी। प्रो. ज्योतिसर शर्मा ने मुझे 'राजस्थान पत्रिका' के मुख्य कार्यालय जाने का सुझाव दिया। वहां जाने से पूर्व मुझे तरह–तरह की शंकाएं थीं जिनका निवारण भी प्रो. शर्मा ने कर दिया और सम्पादक महोदय के नाम एक पत्र भी लिख दिया। जब मैं जयपुर में रहकर राजस्थान पत्रिका पर शोध कार्य की रूपरेखा बना रहा था उन्हीं दिनों यह खबर आयी की पत्रिका के संस्थापक सम्पादक श्री कर्पूरचन्द्र 'कुलिश' जी नहीं रहे। उनके निधन के बाद करीब महीने भर तक उनके सहकर्मियों–साथियों द्वारा लिखे हुए संस्मरण पत्रिका में छपे। उनको पढ़कर मैं उस महान आत्मा के विषय में विस्तार से जान सका। बाद में पत्रिका के मुख्य कार्यालय केसरगढ़ से भी मुझे यही जानकारी मिली की 'कुलिश' जी बहुत ही उदार, सहनशील, परोपकारी और संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी थे। उनसे न मिल पाना मेरे व्यक्तिगत जीवन की क्षति रही, जिसका दुःख मुझे सताता रहा।

'राजस्थान पत्रिका' का मुख्य कार्यालय केसरगढ़, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, जयपुर पर स्थित है। वहां मैं 'राजस्थान पत्रिका' के कार्यकारी सम्पादक श्री गोविन्द चतुर्वेदी जी से मिला। चतुर्वेदी जी ने मुझे आशा से अधिक सहयोग प्रदान किया, साथ ही मुझे पत्रिका के मैनेजिंग डायरेक्टर निहार कोठारी जी से मिलने की सलाह दी। निहार कोठारीजी ने मेरे कार्य के बारे में बात कर मुझे हर संभव मदद का आश्वासन दिया और इस शोध कार्य पर खुशी व्यक्त की जिससे मेरा हौंसला और बढ़ गया। साथ ही निहार जी ने मुझे गोविन्द चतुर्वेदी जी से लगातार सम्पर्क में रहने को कहा क्योंकि उनकी नज़र में चतुर्वेदी जी ही इस विषय पर सर्वाधिक जानकार व्यक्ति थे। इसके बाद मैं जितनी भी बार

जयपुर गया चतुर्वेदी जी ने मुझे हर जानकारी मुहैया कराई। सच कहूं तो मैं उनसे मिलने से पूर्व यह सोच रहा था कि यहां इतनी भीड़ है, इतने लोग काम करते हैं, इतनी व्यस्तता है, क्या चतुर्वेदी जी मुझे समय दे पायेंगे ? क्या वे शोध के महत्त्व को समझ पायेंगे ? लेकिन मेरी सभी आशंकाएं निर्मूल साबित हुईं और उन्होंने मुझे अपने छोटे भ्राता समान स्नेह दिया और अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद मेरे समय मांगने पर कभी ना नहीं किया। उनका योगदान इस शोध कार्य के पूर्ण होने में बहुत बड़ा है। मैं उनका हार्दिक आभारी हूं। प्रो. ज्योतिसर शर्मा का मुझे जयपुर जाने के लिए प्रेरित करना और वहां जाकर गोविन्द जी से मिलना, इस संयोग को मैं जब याद करता हूं तो मुझे हिन्दी के संत कवि कबीर का यह प्रसिद्ध दोहा बरबस ही याद आ जाता है –

"गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागो पायं।
बलिहारी गुरु आपने 'गोविन्द दियो बताय।"

जयपुर के 'सूचना केन्द्र' का आभारी हूं विशेष रूप से वहां के कर्मचारी दयाशंकर शर्मा व बलबीर सिंह जी का जिन्होंने मुझे पत्रिका की पुरानी प्रतियां उपलब्ध कराने में मदद की।

इसके अलावा राजस्थान पत्रिका के पुस्तकालय अधीक्षक अशोक कुमार जी व अन्य कर्मचारियों में मानसिंह जी, धर्म जी व प्रेरणा जी का आभारी हूं जिन्होंने मुझे पत्रिका की पुरानी प्रतियों की फोटो कापी करवाने की सुविधा प्रदान की।

जयपुर के ही नारायण भवन होटल पैलेस के ठाकुर दिग्विजयसिंह उर्फ गुच्चू बन्ना का आभारी हूं जिन्होंने मेरे जयपुर ठहरने की समस्या का समाधान किया। अन्य मित्रों में पशुपति शर्मा, डॉ. बीरपाल सिंह, डॉ. फरमान अली, डॉ. आशाराम भार्गव, निशांत यादव, रमेन्द्र सिंह, सुभाषचन्द्र, अमित कुमार, नरेश मेहता, शाति भूषण व अर्जुन सिंह का विशेष आभारी हूं जिन्होंने यथासमय मेरी मदद की।

परिवार के सहयोग के बिना कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। मैं अपने माता–पिता के स्नेह और आशीर्वाद से ही यह शोध कार्य पूरा कर पाया हूं। उनके ऋण से इस जीवन में मुक्त नहीं हो सकता। मैं ईश्वर से कामना करता हूं कि मुझे इतनी सामर्थ्य प्रदान करे कि मैं निरन्तर उनकी देखभाल और सेवा कर सकूं। शिक्षा के क्षेत्र में विकास हेतु मेरे पिता श्री पूरनचन्द यादव हमेशा तत्पर रहे हैं। उन्होंने विभिन्न शैक्षिक–सामाजिक कार्यों हेतु करीब 8.5 लाख रुपये का दान दिया है। उनकी इसी विशेषता के कारण राजस्थान सरकार ने उन्हें राज्य स्तरीय भामाशाह पुरस्कार से (5 सितम्बर, 2009 को) जयपुर में

नवाजा है। साथ ही माता श्रीमती कैलास देवी ने उन्हें इस कार्य हेतु हमेशा प्रेरित किया। इन दोनों का एक सपना था कि मैं उच्च शिक्षा ग्रहण कर शोध कार्य करूं।

अपने बड़े भाइयों अशोक यादव (डी.पी.) व राजाराम यादव एडवोकेट की जितनी प्रशंसा करूं वह कम है क्योंकि यही मेरी शक्ति के आधार स्तंभ हैं। इन्होंने पारिवारिक जिम्मेदारियों का इस कुशलता से निर्वाह किया कि मैं घरेलू कार्यों से मुक्त रहकर शोध कार्य में पूरा समय दे सका।

मैं अपनी सहधर्मिणी पत्नी डॉ. मंजू यादव (जिला समन्वयक आयुष, अलवर) व पुत्र जयंत यादव के हिस्से का समय चुराकर व साथ ही अपने पिता व पत्नी की जिद के आगे बेबस होकर इस कार्य को पूरा कर पाया हूं। मैं उनके योगदान को कैसे भूल सकता हूं।

अन्त में मैं हार्दिक आभारी हूं शिवप्रताप यादव जी का जिन्होंने इस शोध ग्रंथ को टाईप कर मेरी मुश्किल को कम किया।

— **योगश कुमार यादव**

अध्याय : एक

क्षेत्रीय पत्रकारिता : उद्‌भव एवं विकास

1.1 उद्‌भवकालीन परिस्थितियाँ

1.2 क्षेत्रीय अखबारों का विकास और विस्तार

1.3 किन लोगों ने थामी बागडोर
(मालिक–सम्पादक)

क्षेत्रीय पत्रकारिता : उद्‌भव और विकास

आज हिन्दी की क्षेत्रीय पत्रकारिता परचम पर है। राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, पंजाब केसरी, प्रभात खबर आदि अखबार इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जयपुर, राँची, भोपाल, चण्डीगढ़ आदि स्थान क्षेत्रीय अखबारों के आधार स्तम्भ शहर हैं। इनसे जुड़े हुए पत्रकार आज क्षेत्र विशेष और अखबार विशेष से जुड़े रहने के बावजूद अपना स्थान राष्ट्रीय पत्रकारिता में बना चुके हैं। ऐसा लग रहा है अब राष्ट्रीय और क्षेत्रीय का भेद बेमानी हो गया है।

1.1 उद्‌भवकालीन परिस्थितियाँ

हिन्दी पत्रकारिता के उद्‌भव की कहानी सीधी–साधी और आसान न होकर टेढ़े–मेढ़े और जटिल रास्तों की कहानी है। आज हम जिस युग में रह रहे हैं वह पत्रकारिता के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है। आज जीवन के प्रत्येक पहलू को पत्रकारिता प्रभावित कर रही है। किसी भी प्रकार का विकास आकस्मिक घटना नहीं होती है। प्रत्येक घटना का अपना सन्दर्भ और इतिहास होता है। डॉ. वेदप्रताप वैदिक ने हिन्दी पत्रकारिता के पूर्व की स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है, "प्राचीन काल में जन–संचार के परंपरागत माध्यमों के अतिरिक्त भारत में सार्वजनिक स्थानों पर शिलालेखों से बहुत काम लिया जाता रहा है। अशोक ने अपने धर्म का प्रचार इन्हीं लेखों और वैयक्तिक संपर्क द्वारा किया था। पुरातन मुद्राएं भी इस दृष्टि से हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं।"[1] हम आधुनिक युग में प्रयुक्त होने वाली पत्रकारिता से इसकी तुलना नहीं कर सकते लेकिन लोगों तक सन्देश पहुंचाने का यह एक प्रारंभिक तरीका था।

इसके बाद घूम–घूम कर आवाज देकर और ढोल बजाकर लोगों को किसी घोषणा या एकत्रित होने की सूचना दी जाने लगी। इस सन्दर्भ में डॉ. सुशीला जोशी ने लिखा है, "कभी–कभी कुछ ऐसी राजकीय घोषणाएं होती थी जिन्हें डुग्गी पीटकर जनता के सामने पहुँचा दिया जाता था। नगर में घूमकर मुनादी करने वाले अर्थात डोडीगर के अलावा ऐसी उद्‌घोषणाएँ भी की जाती थीं जो प्रायः भावगीतों में और समाचार पत्रकों के रूप में होती थी। इसके अलावा प्रचारात्मक पत्रक भी तैयार किए जाते थे जिनमें किसी लड़ाई, संकटकालीन स्थिति, चमत्कारपूर्ण घटना अथवा राज्यारोहण समारोह का वर्णन होता

---

1. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम – सम्पादक डॉ. वेदप्रताप वैदिक, पृ. 27

था। कई राजकीय घोषणाओं को शिलाखण्डों, स्तम्भों अथवा मन्दिरों पर उत्कीर्ण करवा दिया जाता था।"[1] संवाद का यह तरीका थोड़ा आगे के विकास की ओर संकेत करता है। इसमें शिलालेख महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अशोक के शिलालेख इसी श्रेणी में आते हैं। अशोक ने अपने 'धम्म' का प्रचार इन्हीं शिलालेखों और व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से किया।

भारत में संचार माध्यम का यह रूप मुगलकाल में बदलने लगता है। पहली बार मुगलकाल में संचार सेवाओं हेतु सूचना अधिकारियों का गठन किया गया। "राजधानी में मुख्य कार्यालय के विविध प्रदेशों में सेना के अधिकारियों तक निरन्तर सूचनाएं भेजी जाती थी। इन्होंने संवाद लेखकों की नियुक्ति भी की। उन्हें 'वाक्यानवीस' कहा जाता था। ये वाक्यानवीस विशेष घटनाओं के समाचार संग्रहित कर हस्तलिखित पत्र निकालने वालों के पास भेजते थे। धावकों, कारवाँओं और हरकारों द्वारा समाचार भेजे जाते थे। इन समाचारों में राजदरबारों, राजदरबारियों तथा उन्हीं से सम्बन्धित घटनाओं का संग्रह रहा करता था। वाक्यानवीस के भेजे गए खतों के सारांश दिल्ली के बादशाह को पढ़कर सुनाये जाते थे।"[2] यह समाचारों का थोड़ा परिष्कृत दौर था जिसमें स्वतंत्र व्यक्तियों की नियुक्ति की गई थी जिनका कार्य समाचार संग्रहण करना था। यह व्यवस्था कुछ–कुछ आधुनिक युग की खुफिया सेवा जैसी थी।

मुगल साम्राज्य के अन्त होने के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी कुछ समय तक संवाद लेखकों की सेवाएं ली लेकिन कालान्तर में अंग्रेजों ने अखबार निकालना शुरू किया। "सन् 1780 ईस्वी की 29 जनवरी को कलकत्ते से 'बंगाल गजेट' के नाम से एक पत्र प्रकाशित हुआ। पत्र का आकार छोटा था, पृष्ठ संख्या केवल दो थी। बारह इंच लम्बे और आठ इंच चौड़े इस पत्र का प्रकाशन 'जेम्स आगस्तस हिक्की' नामक एक अंग्रेज के सम्पादकत्व में हुआ। इसी कारण भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में वह पत्र 'हिक्की गजेट' के नाम से विख्यात हुआ।"[3] हिक्की एक स्वतंत्र विचारों का उदार व्यक्ति था। पत्र के पहले ही अंक में हिक्की ने अपना परिचय कम्पनी के एक पत्र के मुद्रक के रूप में दिया। साथ ही हिक्की ने यह भी स्पष्ट कर दिया की यह पत्र दलगत विचारों से दूर है और इसका विषय राजनीतिक व आर्थिक है। यह एक साप्ताहिक पत्र था और इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने लाभ के हिसाब से पूर्व व्यवस्था में बदलाव किया।

---

1. हिन्दी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम – डॉ. सुशीला जोशी, पृ. 15–16
2. वही, पृ. 16
3. पत्रकारितता के विविध आयाम – राजेन्द्र श्रीवास्तव, पृ. 89

अंग्रेजों ने रियासती कामकाज और कचहरियों में उर्दू को सरकारी भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की। इसीलिए सभी रियासती पत्रों की भाषा उर्दू–बहुल हिन्दी भाषा थी। लिपि और भाषा की इस अलगावपूर्ण नीति ने मुद्रण और गतिशील पत्रकारिता के उस युग में गंभीर साम्प्रदायिक मतभेद पैदा कर दिये। इसी अलगावपूर्ण नीति ने जातीय भाषा और राष्ट्रीयता के विकास में रोड़े अटकाये। 1857 के पश्चात् सम्पूर्ण भारत का घटना चक्र तेजी से घूमा, ज्ञान, साहित्य तथा राजनीति में नई विधाओं का विकास होने लगा और हिन्दी पत्रकारिता को नये शब्द भण्डार की आवश्यकता महसूस होने लगी।

हालांकि हिन्दी का सबसे पहला पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' 1857 से पूर्व ही 30 मई, 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित हुआ, लेकिन यह प्रारंभिक चरण ही था। यह पत्र लगभग डेढ़ वर्ष बाद 4 दिसम्बर, 1927 को बन्द हो गया। "इस पत्र के संस्थापक तथा सम्पादक युगलकिशोर शुक्ल थे जो कानपुर के निवासी थे और कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत में अदालती कार्यवाही के वाचक थे। 'उदन्त मार्त्तण्ड' आठ पृष्ठों का पत्र था और उसका मासिक मूल्य दो रुपये था। इसमें सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति, तबादले, सरकारी विज्ञप्तियाँ, बाजार–भाव तथा देश–विदेश के कुछ समाचार छपते थे। इसकी भाषा खड़ी बोली थी।"[1] हिन्दी पत्रकारिता 1850 के आसपास से स्थिर गति पकड़ती है। इस दौरान अनेक पत्र प्रकाशित होने लगते हैं। 1850 ई. के आसपास प्रकाशित होने वाले पत्रों में प्रमुख रूप से 'बनारस अखबार', 'सुधाकर' और 'प्रजाहितैषी' थे। काशी से जनवरी 1845 में 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुआ। इसे उत्तरप्रदेश से प्रकाशित होने वाला पहला पत्र माना जाता है। इसके प्रकाशक राज शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और सम्पादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे। इसकी भाषा उर्दूमय और लिपि नागरी थी। काशी से ही 1850 ई. में 'सुधाकर' साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगा। इसके प्रकाशक तारामोहन मित्र थे। यह पत्र पहले हिन्दी और बंगला भाषा में प्रकाशित हुआ, किन्तु बाद में हिन्दी में ही प्रकाशित होने लगा। 'बनारस अखबार' की भाषा नीति के विरोध में आगरा से राजा लक्ष्मणसिंह ने 'प्रजाहितैषी' (1855) निकाला। आगरा उस समय शिक्षा केन्द्र बन गया था और यहाँ से हिन्दी के अनेक पत्र निकले जो छात्रों के लिए उपयोगी थे। 1852 में आगरा से ही 'बुद्धिप्रकाश' का प्रकाशन हुआ, जिसके सम्पादक मुंशी सदासुखलाल थे। इस अखबार की भाषा अच्छी थी, इसमें इतिहास, भूगोल, शिक्षा, गणित आदि विषयों पर लेख होते थे।

---

1. पत्र–पत्रकारिता : दशा और दिशा – पल्लवी अग्रवाल, पृ. 53

हिन्दी पत्रकारिता का असली राष्ट्रीय स्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित 'कविवचन सुधा' (1868 ई.) में दिखाई देता है। इसके प्रकाशन से हिन्दी पत्रकारिता में नये युग का आरम्भ हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में "भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' के द्वारा हिन्दी में निर्भीक पत्रकार–कला का आदर्श लोगों के सामने रखां उनसे पहले लोगों ने पत्र निकाले थे। उनमें से कोई इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए नहीं लड़ा था।"[1] इस पत्रिका ने हिन्दी में राष्ट्रीय भावों को जागृत करने हिन्दी पत्रकारों को प्रेरणा देने व पाठकों की अभिरुचि को जागृत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस पत्र का सिद्धान्त वाक्य था – "स्वत्व निज भारत गहे।"[2] इस पत्रिका की स्वाधीन चेतना का प्रमाण इसी बात से लगाया जा सकता है कि अंग्रेजी सरकार ने इस पत्रिका के स्वतन्त्र राजद्रोही लेखों तथा देश–हितपूर्ण टिप्पणियों से क्रुद्ध होकर इसकी 100 प्रतियाँ लेनी बन्द कर दी थीं जबकि इससे पूर्व किसी पत्रिका की प्रतियां इस प्रकार लेनी बन्द नहीं की गई थीं।

'कविवचन सुधा' के अतिरिक्त जनसाधारण के दुख–सुख को पत्रकारिता से जोड़ने वाली, हिन्दी को 'नई चाल में ढालने वाली' राष्ट्रीय उद्‌बोधन और सरकार की भर्त्सना के लिए व्यंग्य करने वाली 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का प्रकाशन भारतेन्दु ने 15 अक्टूबर, 1873 ई. को प्रारम्भ किया। "यह पत्रिका मासिक थी। इसमें पुरातत्व, उपन्यास, कविता, आलोचना, ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथा दार्शनिक लेख, कहानियाँ एवं व्यंग्य आदि प्रकाशित होते थे। लेकिन जब इसमें देशभक्ति पूर्ण लेख निकलने लगे तो इसे बन्द कर दिया गया।"[3] इस पत्रिका ने अंध रूढ़िवादिता, औपनिवेशिक साम्राज्यवाद तथा सामंती संस्कृति के विरुद्ध कभी राजभक्ति की चाशनी में भिगोकर, कभी खुल्लम–खुल्ला रोषपूर्ण व्यंग्यात्मक तेवर दिखाये थे। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में आधुनिक विचारों की छटा, जनतंत्रीय चेतना तथा आधुनिक गद्य का संगम दृष्टिगोचर होता है। इसी बात को उजागर करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन कितना सटीक है, "हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले–पहल इसी चंद्रिका में प्रकट हुआ।"[4] बाद में इस पत्रिका का नाम बदलकर 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' कर दिया गया।

इसके अलावा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने धार्मिक जागृति के लिए 'भगवत तोषिणी' पत्र का संपादन भी किया तो स्त्री–शिक्षा के लिए 'बाला बोधनी' (1874) पत्रिका का प्रकाशन। "इस

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ. 117
2. डॉ. सुशीला जोशी – हिन्दी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम, पृ. 25
3. वही, पृ. 26
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 421

पत्रिका में भी भारतेन्दु ने सरल–सुबोध आम भाषा में, महिलाओं को व्यावहारिक दृष्टांत देकर राष्ट्रीय एकता की लघुतम इकाई परिवार को एक सूत्र में बाँधने के लिए शिक्षा दी थी। झाड़ू को देखो कि जब तक यह बंधी है तब तक कोई भी सबल इसके तोड़ने को सामर्थ नहीं होता और आपकी झाड़ू में सामर्थ है कि मानो कूड़े को बात की बात में बाहर निकाल दे। परन्तु जब उसके बंधन खुल के बिखर जावें तो उस समै सारा बल उसका नाश ही कर डाले। इसी प्रकार जब तक तुम्हारा घर झाड़ू की भाँति एकता भाव करके बंध हुआ है तुम भी सामर्थ हो।"[1] इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता, जन–जागृति और देशभक्ति की भावना का विकास किया। पत्रकारिता के इतिहास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम आदर के साथ लिया जायेगा।

हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र चटर्जी, स्वामी दयानन्द सरस्वती इत्यादि अहिन्दी भाषी पत्रकारों – समाज सुधारकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन महापुरुषों ने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि की राष्ट्रीय महत्ता को स्थापित किया। श्री कृष्ण बिहारी मिश्र ने इनके योगदान को ध्यान में रखते हुए उचित ही कहा है, "देश की जातीय संवेदना की एकसूत्रता और राष्ट्रीय संघ शक्ति को हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि ही शृंखलित और पुष्ट कर सकती है, यह प्रतीति हिन्दी के सेवाव्रती तत्कालीन हिन्दी पत्रकारों की ही नहीं थी, बल्कि देश के समग्र अभ्युत्थान के स्वप्नदर्शी उन महापुरुषों की थी, जिनकी मातृभाषा बांग्ला और गुजराती थी और जो अंग्रेजी और संस्कृत पर असाधारण अधिकार रखने वाले पंडित थे।"[2]

भारतीय पत्रकारिता के विकास के साथ ही ब्रिटिश सरकार की दमन नीति उग्र होती गई। लार्ड वेलेजली के समय में भारतीय पत्रों को कुंठित करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने पहला प्रेस कानून बनाया। इस कानून के पीछे ब्रिटिश सरकार की एक ही मंशा थी कि भारत के लोगों को जहाँ तक हो सके बर्बरता और अंधकार में रखा जाए। लार्ड हैस्टिंग्ज ने सेंसर के नियमों को कुछ शिथिल किया और प्रेस सम्बन्धी कुछ स्पष्ट निर्देश जारी किए।

1. "किसी प्रकार की ऐसी खबर प्रकाशित नहीं की जाए जो कोर्ट के डायरेक्टरों, ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों, कौंसिल के सदस्यों, सुप्रीम कोर्ट के जजों तथा

---

1. राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता – डॉ. मीरा रानी बल, पृ. 119
2. पत्रकारिता : इतिहास और प्रश्न – कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 27

कलकत्ता के बड़े पादरी के सार्वजनिक कार्य अथवा प्रतिष्ठा के विरुद्ध हों।

2. किसी के धार्मिक विश्वासों और भावनाओं पर चोट करने वाली तथा भारतीय प्रजा में आतंक पैदा करने वाली बातों का प्रकाशन न किया जाए।

3. किसी के व्यक्तिगत आचरण पर आघात करने वाली खबरें न छापी जाए।

4. किसी विदेशी पत्रिका से ऐसी बातों को उद्धृत कर पुनः न प्रकाशित किया जाए जो असन्तोष की सृष्टि का कारण बने।"[1]

इसी प्रकार हैंस्टिग्ज के कार्यकाल में भारतीय पत्रों ने थोड़ी स्वतंत्रता की सांस ली ही थी कि उसके उत्तराधिकारी के रूप में ऐडम का भारत में पदार्पण हुआ। वह पत्रों की स्तंत्रता का पूर्णतः विरोधी था। '4 अप्रैल 1823 को ऐडम ने सुप्रीम कोर्ट के सामने समाचार–पत्रों के नियंत्रण के प्रस्ताव रखे। उन सब पर विचार होने के बार गवर्नर–जनरल ने रेग्यूलेशन जारी किया।' इसके अनुसार सरकारी अनुमति के बिना पुस्तकों के पत्रों का छापना और प्रेस का उपयोग करना निषिद्ध ठहराया गया। बिना लाइसेंस के चलने वाले प्रेसों को जब्त कर लेने और उन्हें सरकार की मर्जी के मुताबिक बेच देने का नियम बनाया। लाइसेंस के लिए सरकार के पास दरख्वास्त देने और उसे स्वीकार करने या अस्वीकार करने का निर्णय सरकार पर छोड़ दिया गया। यह एक ऐसा काला कानून था कि राजा राममोहन राय जैसे सन्तुलित विचारों के व्यक्ति ने भी इसके प्रतिवाद का नेतृत्व किया। राजा राममोहन राय ने 1821 में फारसी में पहला साप्ताहिक 'मिरातुल अखबार' प्रकाशित किया। एक दूसरा पत्र 'संवाद कौमुदी' भी उन्हीं की प्रेरणा से प्रकाशित हुआ। कुछ समय बाद राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' प्रकाशित किया, जो बंगला, फारसी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में छपता था। प्रेस नियंत्रण के विरुद्ध राजा राममोहन राय की याचिका 'भारतीय पत्रकारिता' की 'ऐरोपेटिका' मानी जाती है। राजा राममोहन राय ने अंकुरित होती हुई पत्रकारिता के विकास को फूल बनने में जो दिशा प्रदान की उसका व्यापक प्रभाव देश के जीवन पर पड़ना अनिवार्य था। राजा राममोहन राय ने आरम्भिक होती पत्रकारिता के विकास में जो योगदान दिया उसका प्रभाव देश के जन–जीवन पर पड़ना अनिवार्य था। राजा राममोहन राय ने जनहित का प्रतिनिधित्व निर्भयतापूर्वक करने का आदर्श स्थापित करके अखबारों को नई चेतना उत्पन्न करने का माध्यम बना दिया। पत्रों के इस नए स्वरूप ने उसे मुख्य रूप से दो नए आयाम दिए। एक वर्ग उन पत्रों का था जो प्रगतिशील

---

1. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम – सम्पादक डॉ. वेदप्रताप वैदिक, पृ. 23

विचारों के समर्थक थे दूसरा वर्ग उन पत्रों का हो गया जो रूढ़ियों और अन्धपरम्पराओं के समर्थक, कट्टरता के प्रवर्तक तथा शासकों के पक्षपाती हो गए। राजेन्द्र श्रीवास्तव अपने शोध के माध्यम से लिखते हैं – "प्रगतिशील पत्रों के विकास ने जनजीवन में चेतना की लहरी लहरा दी। सन् 1818 ईसवी में जहां एक ओर जन–जागृति के प्रतीक स्वरूप हम भारतीय पत्रों का विकास होते देखते हैं वहीं यह भी देखते हैं कि विदेशी सरकार उन्हें कुचल देने के लिए तत्पर होती है। न्यायालय में बिना मुकदमा चलाए और बिना अपराध सिद्ध हुए किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता अपहरण करके उसे अनिश्चित काल तक जेल में बन्द कर रखने का कानून पहले पहल इसी वर्ष बना।"[1] इसी गम्भीर कानून के तहत कालान्तर में महात्मा गांधी तक को शिकार बनाया गया। सरकार सभी पत्रो को सशंक दृष्टि से देखती रही।

हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महावीर प्रसाद द्विवेदी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक के रूप में इनका योगदान हिन्दी पत्रकारिता के लिए स्थायी महत्त्व का है। इण्डियन प्रेस के मालिक चिन्तामणि घोष ने नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) के सहयोग से 'सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन 1900 ई. में प्रारम्भ किया। 1903 ई. में इसके सम्पादक महावीरप्रसाद द्विवेदी बने जो 1920 तक इस पद पर कार्य करते रहे। पल्लवी अग्रवाल ने लिखा है कि, "द्विवेदी जी बड़े निर्भीक और स्वतन्त्रचेता पत्रकार थे। अनेक साहित्यिक विवारों, भाषा–संस्कार, नये–नये विषयों के प्रवर्त्तन, समालोचना एवं प्रबुद्ध लेखक–मंडल के कारण 'सरस्वती' की धाक जम गयी। छपाई शुद्ध और सुन्दर होती थी। उसमें रंगीन और सादा चित्र छपते थे। प्रकाशन समय पर होता था। और अंकों में सामंजस्य दिखायी देता था।"[2] इन्हीं कारणों से हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में भी द्विवेदी जी का योगदान अविस्मरणीय है।

हिन्दी पत्रकारिता की उद्‌भवकालीन परिस्थितियां, सरकारी दमन और प्रताड़ना की लम्बी गाथा हैं। भारतीय पत्रों और पत्रकारों ने आरम्भ से ही तप और उत्सर्ग का मार्ग अपनाया जिसके चलते अनेक पत्रों को सरकारी दमन के कारण बन्द होना पड़ा। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट के चलते भारतीय भाषा के पत्रों को निशाना बनाया गया।

---

1. पत्रकारिता के विविध आयाम – राजेन्द्र श्रीवास्तव, पृ. 100
2. पत्र–पत्रकारिता : दशा और दिशा – पल्लवी अग्रवाल, पृ. 60

1.2 क्षेत्रीय अखबारों का विकास और विस्तार

सन् 1876 ईसवी में जब लार्ड लिटन भारत के वाइसराय होकर आए उस समय बम्बई प्रान्त में मराठी, गुजराती, हिन्दी और फारसी भाषाओं में प्रायः 62 पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थी। पंजाब, अवध तथा मध्यप्रदेश में साठ, बंगाल में पचास, मद्रास में उन्नीस पत्र–पत्रिकाएँ हिन्दी, फारसी, उर्दू, बंगला, तमिल, तेलगू, मलयालम आदि भाषाओं में प्रकाशित हो रही थीं। पंजाब के 'सिविल और मिलिटरी गजेट' तथा लाहौर के प्रसिद्ध पत्र 'ट्रिब्यून' की स्थापना भी इसी समय हुई थी। ट्रिब्यून की प्रतिष्ठा भारतीय पत्रों में उसके आरम्भिक काल से ही रही है जो आज तक वैसी ही बनी हुई है। भारतीय भाषाओं के पत्रों के प्रकाशन का विस्तार तत्कालीन भारतीय जन–जागृति के विकास पर प्रकाश डालता है। सन् 1857 का विद्रोह यद्यपि असफल हो चुका था और भारतीय जनवर्ग का निरंकुश दमन करने में विदेशी साम्राज्यवादियों ने अपनी घृणित पशुता का चरम रूप प्रदर्शित कर दिया था तथापि विद्रोहेत्तर भारत धीरे–धीरे जागरण के पथ पर अग्रसर हो रहा था।

दलित और पराजित भारत पुनः उठने लगा था यह असन्दिग्ध है। क्या इसका प्रबल प्रमाण भारतीय भाषा के पत्रों के विकास में ही नहीं मिलता ? हम देखते हैं कि ये पत्र आरम्भ से ही राष्ट्रवादी तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के समर्थक रहे हैं। "अपनी इस परम्परा का निर्वाह वे आज तक करते रहे हैं असहाय और विताड़ित जनवर्ग तक पहुँचना उसके उद्‌बोधन के पुनीत, महान तथा निर्भीक कार्य का बोझ उठाने में वे कभी नहीं चूके।"[1] यही कारण है कि भारत को पराधीन बनाकर रखने वालों ने सदा उसे संशक दृष्टि से देखा और उन पत्रों ने भी सदा उनसे लोहा लिया। इसके सिवाए एक बात और है जिसके कारण भारत की विदेशी सरकार की नीति सदा भारतीय भाषा के पत्रों के दमन की रही। उसे कभी यह इष्ट न था कि व्यापक जनसभा जागृत हो। शिक्षा और ज्ञान के प्रसार को इसी कारण रोका जाता रहा। अनिवार्य शिक्षा की योजना को मुख्यतः इसी कारण कभी विदेशी सरकार ने पनपने नहीं दिया। भारतीय भाषा के पत्र जनमानस में प्रविष्ट हो जाते और नई चेतना तथा भावना को प्रवाहित करने में अवश्य सफल होते, शिक्षा, साक्षरता और ज्ञान के प्रसार में सहायक होते, ब्रिटिश सरकार यह नहीं चाहती थी। भारतीय भाषा के पत्रों का दमन प्रारंभ से ब्रिटिश साम्राज्य के अंत तक होता रहा है।

---

1. पत्रकारिता के विविध आयाम – राजेन्द्र श्रीवास्तव, पृ. 111

लार्ड लिटन के जमाने में भारतीय भाषा के पत्रों की संख्या बढ़ रही थी; जनजागृति फैल रही थी। पत्रों की लोकप्रियता तथा जनजीवन में उनके प्रभाव को देखकर सरकार सशंक हो उठी। यह आवश्यक हो गया कि उनके पथ का अवरोधन किया जाए। 'लार्ड लिटन ने भारतीय भाषा के पत्रों की स्वतंत्रता का हनन कर देने के लिए नए कानून की रचना का निश्चय किया। फलतः सन् 1878 ईसवी की 14 मार्च को 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' की घोषणा की गई।'[1] इस कानून के अनुसार सरकार को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह देशी भाषा के किसी पत्र के सम्पादक, प्रकाशक या मुद्रक को यह आदेश दे कि वह सरकार से यह इकरारनामा कर दे कि अपने पत्र में कभी कोई ऐसी बात प्रकाशित न करेगा जो जन–हृदय में सरकार के प्रति घृणा या द्रोह के भाव का सर्जन कर सकती हो। यदि कोई प्रकाशक, मुद्रक या सम्पादक इस इकरारनामे की शर्तों को भंग करेगा तो पहली बार उसे चेतावनी दे दी जाएगी। दूसरी बार पुनः वही अपराध करने पर उसके प्रेस आदि की जब्ती कर लेने में सरकार स्वतंत्र होगी। सरकार ने यह घोषणा भी कर दी कि जो पत्र इस कानून के खतरे से बचना चाहें वे पत्र में प्रकाशित होने से पूर्व समस्त स्तम्भों के प्रूफ का सेंसर करा ले सकते हैं जिसकी व्यवस्था सरकार की ओर से करा दी जाएगी।

इस प्रकार भारत के देशी समाचार पत्रों का गला घोंटने की व्यवस्था ब्रिटिश शासन द्वारा कर दी गई। 'अब यह आवश्यक हो गया कि इस कानून का विरोध किया जाएं भारतीय पत्रों में इसके विरुद्ध गहरा क्षोभ प्रगट किया गया, और धीरे–धीरे आन्दोलन बढ़ता गया। इस क्षोभ की प्रतिक्रिया लन्दन तक हुई जब पार्लियामेंट की साधारण सभा में तत्कालीन ब्रिटिश उदार दल के नेता ग्लैडस्टन ने उक्त कानून की समाप्ति करने का प्रस्ताव पेश किया।'[2] यद्यपि ग्लैडस्टन का प्रस्ताव गिर गया लेकिन जो आन्दोलन हुआ था वह निरर्थक नहीं गया। एक वर्ष के अंदर ही कानून का वह अंश निकाल दिया गया जिसमें प्रकाशन के पूर्व ही प्रकाशनीय स्तम्भों का सेंसर करने की व्यवस्था की गई थी।

इस 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' का विलोप हुआ। उन तीन वर्षों के अन्दर कुछ प्रमुख भारतीय पत्रों का जन्म भी हुआ। मद्रास में प्रसिद्ध 'हिन्दू' की स्थापना सन् 1878 ईसवी में हुई। अब तक मद्रास में 'दि नेटिव पब्लिक ओपिनियन' तथा ' दि मद्रासी' नायक दो ही पत्र थे जो भारतीय थे और विशुद्ध भारतीय नियंत्रण तथा स्वामित्व में प्रकाशित हो रहे थे। 'हिन्दू' ने प्रकाशित होकर उनकी संख्या तीन कर दी। आरम्भ में वह साप्ताहिक ही

---

1. पत्र–पत्रकारिता : दशा और दिशा – पल्लवी अग्रवाल, पृ. 54
2. उन्नीसवीं शदाब्दी की हिन्दी पत्रकारिता में सामाजिक चेतना – राहुल रंजन, पृ. 18

प्रकाशित होता था 'हिन्दू' की प्रतिष्ठा क्रमशः बढ़ती गई। सन् 1883 में वह अपना साप्ताहिक कलेवर परिवर्तित करके सप्ताह में तीन बार प्रकाशित होने लगा अन्त में 1889 तक दैनिक हो गया।

सन् 1879 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के सम्पादकत्व में 'बंगाली' नामक अंग्रेजी भाषा का साप्ताहिक शुरू हुआ। सुरेन्द्र बाबू का 'बंगाली' अपनी राष्ट्रीयता और निर्भीक नीति के कारण शीघ्र भारतीय पत्रों में अग्रणी हो गया। सरकार भी उसके बढ़ते हुए प्रभाव से क्षुब्ध हो उठी।

इस प्रकार हमारे देश की पत्रकारिता उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही थी जब सन् 1909 ईसवी में मार्ले–मिण्टो सुधार भारत को प्राप्त हुए। भारतीय राजनीति पर इन सुधारकों का व्यापक प्रभाव हुआ। सुधार ऐसे समय हुए थे जब बंग–भंग संबंधी सरकार की नीति के कारण सारा राष्ट्र क्षुब्ध हो चुका था। राष्ट्रीय जागृति का निरंकुश दमन करने की चेष्टा करके सरकार ने उस क्षोभ में घृत डालने का काम किया।

प्रथम महायुद्ध के छिड़ने पर तो पत्रों की सीमा अत्यन्त संकुचित कर दी गई। उनका विस्तृत कार्यक्षेत्र और उनकी स्वतंत्रता दोनों का रास्ता रोका गया। युद्ध की समाप्ति होते ही एक बार पुनः राष्ट्रीय जीवन में गहरी हलचल उत्पन्न हुई। युद्ध के बाद भारत को भी निर्लज्जतापूर्वक अँगूठा दिखा दिया गया। जो सामने आया वह रौलट बिल था और माण्टेग्यू–चेम्सफोर्ड के सुधारों के रूप में सड़ी–गली व्यवस्था थी। भारतीयों की आँखें खुल गईं। एक बार फिर जनजीवन में गहरा क्षोभ उत्पन्न हो गया।

उदन्त मार्तण्ड का पहला प्रकाशन 30 मार्च, 1826 को प्रकाशित हुआ। डॉ. श्रीकृष्णलाल ने अपने शोध प्रबन्ध में हिन्दी के आरम्भिक पत्रों की चर्चा करते हुए लिखा है – "हिन्दी का पत्र उदन्त मार्तण्ड था जिसे युगल किशोर शुक्ल ने 1829 में निकाला।"[1] जबकि राहुल रंजन ने इसका प्रकाशन वर्ष 1826 ई. माना है। इसी तरह का विवाद इसके प्रथम होने को लेकर भी है। कुछ लोगों का मत है कि बनारस अखबार हिन्दी का पहला पत्र है। डॉ. राधाकृष्ण दास ने लिखा है "बनारस अखबार उत्तरप्रदेश से प्रकाशित होने वाला हिन्दी का प्रथम पत्र था जिसे वाराणसी से शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने 1845 में प्रकाशित किया था। इसके सम्पादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे।"[2]

---

1. हिन्दी साहित्य का विकास – डॉ. श्रीकृष्णलाल, पृ. 32
2. हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास – डॉ. राधाकृष्ण दास, पृ. 9

अब हिन्दी पत्रकारिता पर काफी शोध हो चुके हैं। इन नवीन शोधों के माध्यम से उपरोक्त धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है। श्री बृजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय ने मार्च 1931 में हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र, तथा नवम्बर 1931 में 'हिन्दी समाचार पत्रों की आरम्भिक कथा' शीर्षक निबन्ध विशाल भारत में प्रकाशित किया। इन दोनों निबन्धों के माध्यम से उदन्त मार्तण्ड की विस्तृत चर्चा आपने की। इससे स्पष्ट होता है कि 'उदन्त मार्तण्ड' ही हिन्दी का प्रथम पत्र है और इसका प्रथम प्रकाशन 30 मई 1826 ई. को हुआ था जो फुल स्केल साइज पत्र था। इसी प्रकार राहुल रंजन ने 'उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता में सामाजिक चेतना' में लिखा है, 'कलकत्ता के कोलू टोला नामक मोहल्ले के 37 नम्बर आमड़ा तल्ला गली से पं. युगल किशोर शुक्ल ने सन् 1826 ई. में उदन्त मार्तण्ड नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालने का आयोजन किया।'[1]

सन् 1871 ईसवी में अल्मोड़ा से भी 'अल्मोड़ा अखबार' का प्रकाशन हुआ। सन् 1872 में कलकत्ते से मासिक रूप में 'दीप्ति प्रकाश' का प्रकाश फैला जिसके सम्पादक श्री कार्तिक प्रसाद खत्री थे। इसी समय हम देश के विभिन्न स्थानों के कतिपय पत्रों को प्रकाशित हुआ पाते हैं। कलकत्ता से 'बिहारबन्धु', दिल्ली से 'सदादर्श', सन् 1973 ईसवी में काशी से 'काशी पत्रिका', अलीगढ़ से 'भारतबन्धु', लाहौर से 'मित्रविलास', प्रयाग से पंडित बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप', शाहजहाँपुर से 'आर्य दर्पण' आदि प्रकाशित हुए।

सन् 1876 ईसवी में पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र और पंडित छोटूराम मिश्र के प्रयत्न से 'भारत मित्र' प्रकाशित हुआ। यह आरम्भ में पाक्षिक रूप में निकला। इसके एक वर्ष बाद 'सार सुधानिधि' और प्रायः एक दशक बाद प्रसिद्ध 'उचित वक्ता' ने कलकत्ता में जन्म ग्रहण किया। इसी समय कई पत्र राजस्थान से भी निकाले जाने की जानकारी प्राप्त होती है। 'उदयपुर से 1879 में 'सज्जनकीर्ति' पत्र तत्कालीन महाराजा सज्जन सिंह के नाम पर प्रकाशित हो रहा था।'[2] जोधपुर से 'मारवाड़ गजट', अजमेर से 'राजस्थान समाचार' राजस्थान के प्रमुख पत्र थे। मिर्जापुर से भी 'नागरी–नीरज' और 'आनन्द कादम्बिनी' चौधरी बदरीनारायण द्वारा प्रकाशित होती थी। इसी समय कानपुर से पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' नामक पत्र प्रकाशित हो रहा था। बम्बई से प्रकाशित होने वाला 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' भी इन पत्रों का ही समकालीन है जो आजतक जीवित है।

---

1. उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता में सामाजिक चेतना – राहुल रंजन, पृ. 35
2. हिन्दी पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास – डॉ. सुशीला जोशी, पृ. 27

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में कलकत्ता के 'बंगवासी प्रेस' से 'हिन्दी–बंगवासी' का प्रकाशन होने लगा था। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक युग से ही आरम्भ होकर हिन्दी पत्रों ने धीरे–धीरे अपना विकास किया। आरम्भ में प्रकाशित हुए पत्र 'उदन्त मार्त्तंड', बंगदूत आदि टाइप के प्रेसों में छपकर प्रकाशित होते थे। यह सच है कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में काशी से प्रकाशित होने वाला 'बनारस अखबार' यद्यपि 'लियो' नामक प्रेस में छपता था तथापि कलकत्ता में बहुत पहले ही नागरी टाइप के प्रेस स्थापित हो चुके थे।

'उदन्त मार्त्तंड' से लेकर हिन्दी बंगवासी तक जैसे–जैसे पत्र विकसित होते गए, हिन्दी भाषा भी विकसित और परिमार्जित होती गई। यह सच है कि 'भारतमित्र' के प्रथम प्रकाशन, अर्थात् 1878 ईसवी तक हिन्दी भाषा उपेक्षित रही। उन दिनों हिन्दी पत्रों के पढ़ने वाले भी नहीं मिलते थे। पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि "जब 'भारत मित्र' प्रकाशित हुआ था उस समय उसके प्रतिष्ठान जब कलकत्ता के हिन्दी भाषा–भाषियों से ग्राहक बनने को कहते तो वहाँ के देशवासी व्यापारी उत्तर देते कि चन्दा आप भले ही ले जाएं पर हमारे यहाँ पढ़ने वाला कोई नहीं है। इस पर दुर्गाप्रसाद जी पत्र पढ़कर कई ग्राहकों को सुना भी आया करते थे।"[1] इस स्थिति में पहले–पहल हिन्दी बंगवासी के प्रकाशन के साथ परिवर्तन की सूचना मिलने लगी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कारण जो राजनीतिक चेतना देश में उत्पन्न हो रही थी उसी ने संभवतः भारतीय पत्रों तथा उनके महत्त्व की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। हिन्दी भाषी जनसमुदाय भी धीरे–धीरे उक्त धारा से प्रभावित होने लगा था। पर यह सब होते हुए भी उस समय तक हिन्दी पत्रकारिता का क्षेत्र अति संकुचित और पत्र–कला शैशवास्था में ही थी। पत्रों में जो समाचार प्रकाशित होते थे वे अंग्रेजी पत्रों से संचित होते थे। अंग्रेजी के सिवा अधिकतर संवाद बँगला पत्रों की जूठन होते थे। समाचार भी अधिकतर साधारण होते थे – 'कहीं आग लग गई, कहीं चोरी हो गई, कहीं किसी अफसर का तबादला हो गया। लेख अधिकतर साहित्य, भाषा, विधवा–विवाह, सनातन धर्म और आर्य समाज के झगड़ों से ही सम्बन्धित होते थे।'[2]

---

1. पत्रकारिता के विविध आयाम – राजेन्द्र श्रीवास्तव, पृ. 126
2. हिंदी पत्रकारिता, इतिहास, स्वरूप एवं संभावनाएं – अनिल सिन्हा, पृ. 19

उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होते–होते, बीसवीं सदी के आरम्भ में कतिपय हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं ने जन्म ग्रहण किया। यह बंग–भंग के जागरण का काल था। फलस्वरूप कतिपय जागृत और तेजस्वी पत्रों का जन्म हुआ जिन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना स्थान बना लिया। प्रयाग से मालवीय जी ने सन् 1900 ईसवी में 'अभ्युदय' प्रकाशित किया। कुछ समय बाद नागपुर से 'हिन्दी केसरी' का प्रकाशन होने लगा। 'हिन्दी केसरी' जब नागपुर से प्रकाशित होता था तो उसकी बड़ी धाक थी। 'हिन्दी बंगवासी' और 'हिन्दी केसरी' ऐसे दो पत्र थे जिनका हिन्दी में प्रकाशित पत्रों में सबसे अधिक प्रचार था।

'अभ्युदय' के बाद तो हिन्दी में साप्ताहिकों ने वह परम्परा और आदर्श उपस्थित किया जिस पर किसी भी भाषा–भाषी समुदाय को गर्व हो सकता है। स्वर्गीय गणेशशंकर जी का 'प्रताप', श्री माखनलाल जी का 'कर्मवीर', श्री सुन्दरलाल जी का 'भविष्य', गोरखपुर के श्री दशरथप्रसाद द्विवेदी का 'स्वदेश' आदि साप्ताहिकों ने सन् 1918–19 ईसवी में हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्र में जो धूम मचाई उस पर हिन्दी पत्रकारिता उचित गर्व कर सकती है।

अब तक हमनें हिन्दी पत्रों के विकास के सम्बन्ध में लिखा है जिसमें दैनिक पत्र की चर्चा नहीं की। हिन्दी के दैनिक पत्रों का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। सन् 1911 ईसवी के नवम्बर से कलकत्ते से दिल्ली दरबार के अवसर पर 'भारतमित्र' दैनिक रूप में प्रकाशित होने लगा। 'भारतमित्र' के दैनिक प्रकाशन के बाद धीरे–धीरे देश के विभिन्न भागों में हिन्दी भाषा के कतिपय दैनिक प्रकाशित होने लगे। दैनिक पत्रों की परम्परा, उनकी एक शृंखला 'भारतमित्र' के दैनिक प्रकाशन के बाद आरम्भ होती है। दूसरा दैनिक पत्र सन् 1885 ईसवी में कानपुर से प्रकाशित हुआ। इस पत्र का नाम 'भारतोदय' था। इसके संस्थापक श्री सीताराम जी थे। तीसरा दैनिक 'हिन्दोस्थान' था जिसे प्रकाशित करने वाले प्रगतिशील राजा रामपाल सिंह थे।

हमारे देश के हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्र में, व्यापक जनसमाज में, प्रथम महायुद्ध की घटनाओं ने जिस जीवन का सर्जन किया, वह दैनिक पत्रों के विकास के लिए अनुकूल आधार हो गया। जनता की जागृति से उद्‌भूत जिज्ञासा को शान्त करने के लिए दैनिकों का प्रकाशन आवश्यक हो गया। इसी कारण दैनिकों का विकास होने लगा। न केवल दैनिकों की संख्या में वृद्धि हुई अपितु विकास की ओर उनके अभियान में एक के बाद दूसरे स्तर भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगे।

'जब काशी से पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर के सम्पादकत्व में स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त ने दैनिक 'आज' का प्रकाशन किया तो उसने हिन्दी दैनिकों के सम्मुख एक नया आदर्श स्थापित कर दिया।'[1] शिवप्रसाद जी की यह कल्पना थी कि हिन्दी में एक ऐसा दैनिक प्रकाशित हो जो अंग्रेजी अथवा अन्य किसी भी भाषा में प्रकाशित होने वाले किसी भी उच्च–कोटि के दैनिक के समकक्ष हो। पराड़कर जी जैसे प्रौढ़, गंभीर तथा आदर्शवादी सम्पादक के नेतृत्व में दैनिक 'आज' ने प्रकाशित होकर उस कल्पना की नींव डाली। 'आज' ने भाषा, भाव और शैली, विचार, विवेचना तथा विविधता, मौलिकता, नवीनता तथा गम्भीरता, आदर्शवादिता, जनसेवा तथा निर्भीकता की दृष्टि से दैनिक पत्रों के सामने नए धरातल की सृष्टि कर दी।

1826 ई. से लेकर आज तक भारतीय पत्रकारिता ने लम्बी यात्रा पूरी की है। शोध के इस अध्याय में इस यात्रा की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करना रहा है। अपनी इस यात्रा में उसे न जाने कितनी प्रतिकूल परिस्थितियों, कठिनाइयों, प्रहारों, संघर्षों का जिनकी जटिलता को भारत में आसीन विदेशी सत्ता ने और भी अधिक उग्र कर दिया, का सामना करना पड़ा।

भारत में भाषाई पत्रों की संख्या बढ़ रही है जिसमें दैनिक के अलावा साप्ताहिक और पाक्षिक पत्र भी हैं। राजेन्द्र श्रीवास्तव ने 'पत्रकारिता के विविध आयाम' में लिखा है, "आज इस देश में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी में कुल मिलाकर दो हजार से अधिक दैनिक और साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। इनके सिवा तीन सहस्त्र से अधिक पाक्षिक, मासिक अथवा त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी निकलती हैं जो विभिन्न क्षेत्रों और भाषाओं के साहित्य तथा ज्ञान को बढ़ा रही हैं।"[2] इसी प्रकार श्रीमती बार्नस ने 'भारतीय पत्रकार–कला' का इतिहास नामक ग्रंथ लिखा है जिसमें उन्होंने भारत में प्रकाशित होने वाले पत्रों की संख्या कम लिखी है। आप लिखती हैं, "भारत में अंग्रेजी भाषा के दैनिक पत्र बत्तीस, देशी भाषाओं के दैनिक पचहत्तर तथा दोनों भाषाओं के साप्ताहिकों की संख्या कुल एक सौ तीस है।"[3] हम इस संख्या को एकदम सही तो नहीं कह सकते लेकिन इतना अवश्य है कि विभिन्न कोनों से पत्रों का प्रकाशन हो रहा है जो जन–जीवन का, राष्ट्र की सामाजिक और राजनीतिक धारा का, भाषा, साहित्य और ज्ञान की अभिवृद्धि तथा समाज का मनोरंजन कर रहे हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारी

---

1. जनसंचार माध्यम : चुनौतियाँ और दायित्व – डॉ. त्रिभुवन राय, पृ. 105
2. पत्रकारिता के विविध आयाम – राजेन्द्र श्रीवास्तव, पृ. 131–132
3. भारतीय पत्रकार–कला का इतिहास – श्रीमती बार्नस, पृ. 72

पत्रकार कला सर्वांगीण तथा समुन्नत हो गई है। 'हिन्दी भाषा की पत्रकारिता इंग्लैड, अमेरिका के पत्रों की तुलना तो क्या करेगी वह इसी देश की कई देशी भाषाओं के पत्रों तथा उनकी पत्रकार–कला का मुकाबला भी नहीं कर सकती।'[1] बँगला तथा गुजराती और मराठी के पत्र हमसे कहीं अधिक उन्नतावस्था को पहुँच चुके हैं।

क्षेत्रीय हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों के प्रकाशन ने 20वीं सदी के अन्तिम दशक में गति पकड़ी। इसी दौर में हिन्दी भाषी क्षेत्रों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया और साक्षरता का तेजी से विस्तार हुआ। साथ ही इस दौर में आर्थिक सुधारों के चलते तकनीक की उपलब्धता आसान हो गयी। इस दौरान घटी घटनाओं ने भी जनमानस में हलचल और जिज्ञासा को जन्म दिया। इन घटनाओं में अयोध्या, गुजरात में भूकंप, केन्द्र और राज्यों में हुई राजनीतिक उठापटक प्रमुख थी। इन घटनाओं ने हिन्दी भाषी जनता को समाचार पत्रों की तरफ उन्मुख कर दिया। इन सबका नतीजा यह हुआ कि इस सदी की शुरुआत में हिन्दी दैनिकों की पहुंच और प्रभाव का दायरा एकाएक बहुत विस्तृत हो गया। माधव हाड़ा ने इस घटना का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि, "उर्दू के 534 और अंग्रेजी के 407 दैनिक समाचार–पत्रों की तुलना में वर्ष 2001 में प्रकाशित होने वाले हिन्दी दैनिकों की संख्या 2507 हो गई। प्रसार संख्या में भी हिन्दी दैनिक आगे निकल गए। आंकड़ों के अनुसार 2,33,82,867 प्रतियों के साथ हिन्दी दैनिकों ने सभी दैनिक पत्रों की कुल प्रसार संख्या के 40.2 प्रतिशत पर कब्जा कर लिया।"[1]

हिन्दी दैनिकों की प्रसार संख्या इस विस्फोटक ढंग से हुई की इनकी रीति–नीति और चरित्र में बदलाव आने लगा। लगभग सभी दैनिक इसी दौर में बहुसंस्करणीय हो गए। इसके अलावा दूर–दराज के गांव–ढ़ाणियों के पाठकों तक पहुँच बनाने हेतु इन्होंने जिला स्तर पर संस्करण निकालने शुरु किये। अब इनमें गली–मोहल्लों, स्कूल–कॉलेजों के सभी घटनाक्रम स्थान बनाने लगे। घायल, मृतक, क्षतिग्रस्त, उपचार, रैफर आदि शब्द इनमें विशेष लोकप्रिय होने लगे। साथ ही क्षेत्रीय जिला संस्करणों का बड़ा हिस्सा विज्ञापनों से भी भरा होता है। इसकी गद्य भाषा में भी बदलाव आया और आज अंग्रेजी के शब्दों को देवनागरी में धड़ल्ले से प्रयुक्त कर रहे हैं। आज क्षेत्रीय हिन्दी पत्रकारिता अधिक से अधिक पाठक और विज्ञापन बटोरने की कोशिश में रहती है। पर इसमें गुणवत्ता पर जोर दिया जाना चाहिए ताकि यह अंग्रेजी के अखबारों का स्थायी विकल्प हो सके।

---

1. मीडिया और बाजारवाद – रामशरण जोशी, पृ. 97
2. मीडिया, सारिका और संस्कृति – माधव हाड़ा, पृ. 37

1.3 किन लोगों ने थामी बागडोर (मालिक–सम्पादक)

हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत के समय अधिकतर सम्पादक ही मालिक थे। यह पत्रकारिता का शुरुआती दौर था। अधिकतर पत्रकार समाज सुधारक और जागरूक राष्ट्र प्रेमी थे। इन लोगों में पत्रकारिता के प्रति समर्पण भाव और अटूट निष्ठा भरी थी। इसी निष्ठा का परिणाम था कि ये लोग शासन के दमन और संघर्षों को सहते हुए भी अपने पथ पर चलने का संकल्प रखते थे। आजकल व्यावसायिक पत्रकारिता का जो दौर शुरू हुआ है वह उस समय के पत्रकारों ने सपने में भी नहीं सोचा था।

कुछ समय बाद अधिकतर कवि और लेखक–गणों ने इस कार्य को आगे बढ़ाने में अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और बालकृष्ण भट्ट जैसे अनगिनत साहित्य प्रेमी ऐसे ही व्यक्ति थे। हिन्दी के प्रथम समाचार–पत्र होने का गौरव व हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भ का श्रेय उदन्त मार्तंड को प्राप्त है। 'यह साप्ताहिक पत्र 30 मई, 1826 को जुगलकिशोर शुक्ल ने कलकत्ता के कोलू टोल मोहल्ले से निकालना शुरू किया था।'[1] उदन्त मार्तंड' के अंकों में इसका परिचय छपा मिलता है। यह दुर्भाग्य ही था कि हिन्दी पत्रकारिता के उदय के साथ ही आर्थिक अभावों का ग्रहण भी शुरू हो गया। यह पत्र सरकारी सहयोग के अभाव व ग्राहकों की कमी के कारण कम्पनी सरकार के प्रतिबन्धों से अधिक नहीं लड़ पाया और 4 दिसम्बर, 1827 को सदा के लिए अस्त हो गया।

उदन्त मार्तंड के बाद कलकत्ता से ही द्वितीय उल्लेखनीय पत्र राजाराम मोहनराय द्वारा सम्पादित 'हिन्दू हेराल्ड' था जो बंगला, फारसी, अंग्रेजी व हिन्दी में निकला और 'बंगदूत' के नाम से जाना गया। 'यह पत्र 10 मई, 1829 को प्रकाशित हुआ। यह पत्र साप्ताहिक था। इसके सम्पादक नीलरतन हालदार थे।'[2]

उत्तरप्रदेश से श्री गोविन्द नारायण थत्ते के सम्पादन में जनवरी, 1845 में 'बनारस अखबार' निकला। इसके संचालक मनीषी राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद थे। बहुत से लोग इसे ही हिंदी का पहला अखबार मानते हैं उदाहरण के लिए डॉ. राधाकृष्ण दास। परन्तु यह हिन्दी भाषी प्रदेश का समाचार–पत्र अवश्य था; न कि हिन्दी का पहला अखबार। इसमें देवनागरी लिपि का प्रयोग है। इसमें अरबी व फारसी शब्दों की भरमार थी जिसको समझना साधारण जनता के लिए कठिन था।

---

1. पत्रकारिता : इतिहास और प्रश्न – कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 23
2. पत्रकारिता की रूपरेखा – श्रीपाल शर्मा, पृ. 171

"1850 में श्री तारामोहन मिश्र नामक बंगाली ने बनारस से 'सुधाकर' पत्र निकाला।"[1] यह पत्र साप्ताहिक था तथा बंगला व हिन्दी दोनों में प्रकाशित होता था। भाषा की दृष्टि से 'सुधाकर' को ही हिन्दी प्रदेश का पहला पत्र कहना चाहिए। 1853 में यह पत्र केवल हिन्दी में ही प्रकाशित होने लगा। इसके मुद्रक पण्डित रत्नेश्वर तिवारी थे। इस पत्र में ज्ञान तथा मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री होती थी।

"मुन्शी सदासुखलाल के सम्पादन में 1852 में आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' निकला। यह पत्र नुरुल बसर प्रेस से प्रकाशित होता था।"[2] यह पत्र पत्रकारिता की दृष्टि से ही नहीं वरन् भाषा एवं शैली के विकास के विचार से विशेष महत्त्व रखता है। इसमें विविध विषयों तथा इतिहास, भूगोल, शिक्षा, गणित आदि पर सुन्दर लेख प्रकाशित होते थे। इसकी भाषा की प्रशंसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने भी की है।

भरतपुर के राजा ने शासन की ओर से 1852 में एक मासिक पत्र निकाला। यह पत्र उर्दू एवं हिन्दी का था अर्थात् यह द्विभाषी पत्र था। इसकी जबान उर्दू थी तो लिपि देवनागरी। यह दो कालम का पत्र था तथा दोनों ही भाषाएँ एक–एक कालम में होती थी। इसे राजस्थान का प्रथम पत्र होने का गौरव प्राप्त है। इसी के दौरान ग्वालियर से 'ग्वालियर गजट', आगरा से 'प्रज्ञाहितैषी' आदि पत्र प्रकाशित हुए।

अजीमुल्लाखां ने 1857 में दिल्ली से 'पयामे आजादी' नामक एक राष्ट्रीय अखबार का प्रकाशन शुरू किया। अजीमुल्लाखां नाना साहब पेशवा के परामर्शदाताओं में से थे। यह पत्र पहले उर्दू में निकलता था पर कुछ समय बाद हिन्दी में निकलने लगा। 1857 के आंदोलन के कारण भारतीय अखबार अब सरकार के विरुद्ध बोलने लगे थे। इस पत्र में सरकार विरोधी सामग्री होती थी। यह पत्र विदेशी शासन का कोपभाजन होकर शीघ्र ही बन्द हो गया।

'पयामे आजादी' के बाद 'धर्मप्रकाश', 'सूरजप्रकाश', 'सर्वोकारक', 'जगलाभ', 'चिन्तक', 'प्रजाहित', 'ज्ञानप्रकाश', 'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका', 'वृतान्त विलास', 'रत्नप्रकाश' आदि पत्र निकले।

1867 तक विदेशी शिक्षा के कारण परम्परावादी विचारधारा का लोप हो रहा था। अतः अनेक समाज सुधारकों ने अपनी संस्थाएं कायम की और इसी शिक्षित वर्ग ने

---

1. हिन्दी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम – डॉ. सुशीला जोशी, पृ. 23
2. वही, पृ. 23

पत्रकारिता को एक नई दिशा प्रदान की। हिंदी पत्रकारिता का यह युग हिन्दी गद्य–निर्माण का युग माना जाता है। इस युग में अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं की चर्चा हम यहां कर रहे हैं :

1868 में काशी के बाबू हरिश्चन्द्र ने 'कवि वचनसुधा' नामक मासिक पत्र निकाला। प्रारम्भ में यह पत्रिका प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का प्रकाशन करती थी। इसमें प्रकाशित राजनैतिक तथा सामाजिक लेखों ने एक विशिष्ट व व्यापक पाठक वर्ग तैयार किया। इस पत्र का सिद्धान्त वाक्य था – "स्वत्व निज भारत गहे"।[1] पाठकों के दिल में इस पत्रिका ने ऐसी जगह कर ली की हर अंक के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था। हिन्दी पत्रकारिता के नये युग का आरम्भ ही 'कवि वचनसुधा' से माना जाता है।

5 अक्टूबर, 1873 को काशी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' को आरम्भ किया। यह पत्रिका मासिक थी। इसमें पुरातत्व, उपन्यास, कविता, आलोचना, ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथा दार्शनिक लेख, कहानियां एवं व्यंग्य आदि प्रकाशित होते थे।

1 जनवरी, 1874 को भारतेन्दु ने 'बाला बोधिनी पत्रिका' निकाली। यह पत्रिका महिलाओं की मासिक पत्रिका थी। "इस पत्रिका ने नारी जागरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया। प्रथम अंक में ही पत्रिका ने अपने आपको महिलाओं की छोटी बहन व सहेली कहा।"[2]

1 सितम्बर, 1877 को प्रयाग से बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' नाम का मासिक पत्र निकाला। यह पत्र घोर संकट के बावजूद भी 35 वर्ष तक निकला। भारतेन्दु जी ने इस पत्र का उद्घाटन किया था। "पत्रकारिता की दृष्टि से 'हिन्दी प्रदीप' का जन्म हिन्दी साहित्य के इतिहास में क्रांतिकारी घटना है। इसने हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा प्रदान की।"[3] इसका स्वर राष्ट्रीयता, निर्भीकता तथा तेजस्विता का था। अतः सरकार इस पर कड़ी नज़र रखती थी।

17 मई, 1878 को कलकत्ता से यह पत्र प्रकाशित हुआ। जिस समय यह पत्र प्रकाशित हुआ उस समय वहां से हिन्दी का कोई भी पत्र नहीं निकलता था। यह बड़ा ही

---

1. राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता – डॉ. मीरा रानी बल, पृ. 92
2. वही, पृ. 92
3. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम – सम्पादक डॉ. वेदप्रताप वैदिक, पृ. 23

प्रसिद्ध और कर्मशील पत्र था। 'भारतमित्र' के सबसे पहले वैतनिक सम्पादक पण्डित हरमुकुन्द शास्त्री लाहौर से बुलाए गए थे। इस पत्र की आयु काफी बड़ी थी। यह पत्र राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक व सामाजिक आन्दोलनों का खुला ब्यौरा छापता था।

"13 अप्रैल, 1879 को प्रकाशित "सार सुधानिधि" पं. सदानन्द जी के सम्पादन में निकला। इसके संयुक्त सम्पादक पं. दुर्गाप्रसाद सहायक सम्पादक गोविन्द नारायण और व्यवस्थापक पं. शंभुनाथ थे।"[1] इसकी भाषा संस्कृत मिश्रित हिन्दी थी, इसी कारण भाषा कुछ कठिन किन्तु साफ थी। यह तेजस्वी पत्र अपनी उग्र वाणी के कारण सरकार का कोप भाजन बना। फलतः 1890 में यह बन्द हो गया।

यह पत्र देसी राज्यों से निकलने वाला पहला 'हिन्दी पत्र' था क्योंकि राज्यों के सभी पत्र उर्दू व हिन्दी में निकलते थे जिनमें उर्दू का ही प्रथम स्थान होता था। मेवाड़ के महाराणा सज्जन सिंह के नाम पर यह पत्र निकला था। यह पत्र 1879 में आगरा के पं. बंशीधर वाजपेयी के सम्पादन में प्रकाशित हुआ।

पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने 7 अगस्त, 1880 को 'उचित वक्ता' नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। डॉ. सुशीला जोशी ने 'हिन्दी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम' में लिखा है, "मीठी–मीठी कटारी मारने, व्यंग्य, मुंह चिढ़ाने में उचित वक्ता पंच का काम करता था।" इसी समय 1883 ई. में प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से "ब्राह्मण" पत्र का प्रकाशन शुरू किया जो अपने समय का सबसे तेजस्वी पत्र था।

बाबू राम कृष्ण वर्मा ने काशी से 3 मार्च, 1889 को 'भारत जीवन' प्रकाशित किया। यह पहले 4 पृष्ठों का था बाद में 8 पृष्ठों का हो गया, फिर 6 पृष्ठों में छपने लगा। यह पत्र 30 वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। "भारत जीवन' एक दब्बू अखबार था। स्वाधीनता पूर्व इसने कभी साहस का परिचय नहीं दिया।"[2]

1885 में राजा रामपाल सिंह लन्दन से इसे कालाकांकर ले आए और यहां इसके हिन्दी व अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित होने लगे। यह उत्तरप्रदेश से पं. मदनमोहन मालवीय के सम्पादन में निकला। "इस पत्र में सरकारी अफसरों की कटु आलोचना होती थी। हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि का यह सबल समर्थक था।"[3]

---

1. हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम – सम्पादक डॉ. वेदप्रताप वैदिक, पृ. 23
2. उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता में सामाजिक चेतना – राहुल रंजन, पृ. 59
3. हिन्दी पत्रकारिता, इतिहास स्वरूप एवं संभावनाएं – अनिल सिंहा, पृ. 75

1887 में जबलपुर से पं. रामगुलाम अवस्थी के सम्पादन में यह पत्र निकला। यह साप्ताहिक पत्र था। बाद में इसके सम्पादक हितकारिणी स्कूल के हैडमास्टर राय साहब रघुबर प्रसाद द्विवेदी हो गये।

मुंजफ्फरपुर से 1 जनवरी, 1883 को बाबू देवकीनन्दन खत्री ने 'साहित्य सुधानिधि' का प्रकाशन किया। इसके सम्पादक मण्डल में बड़े–बड़े साहित्यकार बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, बाबू राधाराम कृष्णदास, बाबू कीर्तिप्रसाद थे।

"यह पत्रिका 1896 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने त्रैमासिक प्रकाशित की थी। इसके सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, कालीदास और राधाकृष्णदास थे।"[1] 1907 में यह मासिक पत्रिका हो गई और इसके सम्पादक श्यामसुन्दर दास, रामचन्द शुक्ल, रामचन्द्र वर्मा और वेणीप्रसाद बनाये गये। इसमें भाषा, साहित्य, अनुसंधान और समालोचना सम्बन्धी लेख रहते थे।

1900 का वर्ष हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण है। 1900 में प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका अपने समय की युगान्तरकारी पत्रिका रही है। यह अपनी छपाई, लिखाई, कागज और चित्रों के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। इसे बंगाली बाबू चिन्तामणि घोष ने प्रकाशित किया था तथा इसे नागरी प्रचारिणी सभा का अनुमोदन प्राप्त था। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक मण्डल में बापू राधाकृष्णदास, जगन्नाथदास रत्नाकर, किशोरीदास गोस्वामी, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री तथा बाबू श्यामसुन्दर दास थे। 1903 में इसके सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी बने। "इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी–रसिकों के मनोरंजन के साथ भाषा के सरस्वती भण्डार की अंगपुष्टि, वृद्धि और पूर्ति करना था।"[2]

राजस्थान लंबे समय तक रियासती प्रभाव वाला क्षेत्र रहा है इसके बावजूद यहां राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। राजनैतिक चेतना के प्रसार में अनेक अखबारों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रियासत काल में भी कुछ रियासतों ने अखबार निकालने शुरू किये थे जिसमें मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह के नाम 'सज्जनकीर्ति सुधाकर' प्रथम रियासती अखबार माना जाता है। 'सज्जनकीर्ति सुधारक' 1879 में आगरा के पं. बंशीधर वाजपेयी के सम्पादन में प्रकाशित हुआ।'[3] यह पत्र रियासतों में पहला पत्र था जिसमें

---

1. हिन्दी पत्रकारिता, इतिहास स्वरूप एवं संभावनाएं – अनिल सिंहा, पृ. 75
2. हिन्दी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम – डॉ. सुशीला जोशी, पृ. 26
3. वही, पृ. 27

सामान्य जानकारी की सूचनाएं ही प्रकाशित होती थी। महाराणा के प्रभाव के कारण इसकी प्रगतिशीलता दबी हुई थी।

इसके बाद "1889 ईस्वी में अजमेर से 'राजस्थान समाचार' मुंशी समरथदान के सम्पादन में प्रकाशित हुआ लेकिन कुछ समय बाद यह बन्द हो गया।"[1] इसके बन्द होने में आर्थिक संकट ही प्रमुख था। राजस्थान में राजनैतिक चेतना के विकास में 'तरुण राजस्थान' नामक अखबार का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसकी स्थापना 1923 ईस्वी में श्री जयनारायण व्यास ने की थी और बिजौलिया किसान आन्दोलन के प्रमुख नेता श्री विजयसिंह 'पथिक' इसके सम्पादक थे। 'पथिक' जी ने बिजौलिया किसान आंदोलन को इस पत्र के माध्यम से लोकप्रिय बनाया।

राजस्थान में अजमेर केन्द्रशासित प्रदेश था और रियासतों की बजाय यहां राजनैतिक गतिविधियां अधिक थी। अजमेर स्वाधीनता आन्दोलन में एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा था। अनेक क्रांतिकारी अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह 'पथिक', हरिभाऊ उपाध्याय आदि अजमेर से ही जुड़े हुए थे। "हरिभाऊ उपाध्याय अजमेर के प्रधानमंत्री थे, उन्होंने औडुम्बर व नवजीवन नामक दो पत्र 1939 ईस्वी में शुरू किये।"[2] भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव और राष्ट्रवादी विचारधारा उपाध्याय जी के व्यक्तित्व के अभिन्न अंग थे। इन पत्रों के माध्यम से उपाध्याय जी ने अजमेर में ही नहीं बल्कि पूरे राजस्थान में स्वाधीनता संग्राम के प्रति लोगों को एकजुट कर संघर्ष के लिए प्रेरित किया। इनका प्रकाशन लंबे समय तक होता रहा। उपाध्यक्ष जी के व्यक्तित्व का प्रभाव इन पत्रों पर स्पष्ट देखा जा सकता है।

विजयसिंह पथिक ने 1922 में एक अन्य पत्र 'नवीन राजस्थान' का प्रकाशन भी किया था जो अजमेर से प्रकाशित होता था। "राजस्थान में अजमेर से ही 'नवज्योति' अखबार 1936 ई. में प्रकाशित होना शुरू हुआ। इसके संस्थापक दुर्गाप्रसाद चौधरी व सम्पादक दीनबन्धु चौधरी थे।"[3] यह लंबे समय तक चला, बीच में कुछ समय के लिए बन्द रहा, लेकिन बाद में फिर यह सक्रिय हो गया और आज तक यह अखबार प्रकाशित हो रहा है।

---

1. समग्र राजस्थान – डॉ. दिनेश शर्मा, पृ. 252
2. राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम – बी.एल. पनगड़िया, पृ. 118
3. राजस्थान सामान्य परिचय – डॉ. एल.आर. भल्ला, पृ. 45

TH-15273
Jawaharlal Nehru University Library

इनके अलावा जयनारायण व्यास द्वारा स्थापित 'अग्निबाण' व 'अखण्ड भारत' भी महत्त्वपूर्ण रहे; इन दोनों का प्रकाशन 1936 ई. में हुआ। अखण्ड भारत बम्बई से छपता था। वर्धा से प्रकाशित 'राजस्थान केसरी' व कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप' दोनों पत्रों ने भी राजस्थान के जनजीवन में जागरण का भरपूर प्रयास किया। "श्री पथिक जी ने गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' के माध्यम से बिजोलिया किसान आन्दोलन की अमानवीय घटनाओं को पूरे देश के सामने रखा।"[1]

इसके बाद "1956 ईस्वी में श्री कर्पूरचन्द कुलिश ने राजस्थान पत्रिका सायंकालीन की शुरुआत की।"[2] आज यह एक बड़े उद्योग का रूप ले चुका है। श्री कुलिश जी ने इस अखबार को अपने खून–पसीने से सींचा इसीलिए आज यह भारत का एक प्रमुख अखबार है। इसी अखबार पर शोध करना,इस प्रबन्ध का मुख्य कार्य है।

वर्तमान में अधिकांश अखबारों के मालिक सम्पादक एक ही व्यक्ति हैं। यह व्यवसायिकता का दौर है। आज अखबार सामाजिक दायित्वों से भटके हुए नज़र आते हैं। मालिक व सम्पादक दोनों एक ही व्यक्ति का होना आज की पत्रकारिता की दृष्टि से एक स्वस्थ चिह्न नहीं है। जब अखबार में छपने वाली खबरों और अखबार के प्रबंधन का कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में आता है तो अखबार पर व्यावसायिकता का दबाव बढ़ जाता है और सामाजिक सरोकारों का दमन होने लगता है। सम्पादक का कार्य स्वतंत्र व्यक्ति को सौंपा जाना चाहिए ताकि अखबार की प्रतिष्ठा बढ़े और व्यावसायिकता के चक्कर से निकल अखबार पाठकों को जागरूक कर सके। क्षेत्रीय अखबारों में आज हर स्तर पर मालिक का दखल है जिससे स्वतंत्र पत्रकारिता का दमन होता है। देश में लोकतंत्र को मजबूत बनाने का कार्य हमारी प्रेस का भी है।

'राजस्थान पत्रिका' और 'दैनिक भास्कर' राजस्थान के दो बड़े अखबार हैं लेकिन दोनों के मालिक अपने–अपने अखबारों के प्रधान सम्पादक भी हैं। हिन्दी क्षेत्रों में आज अखबार लगातार लोकप्रिय हो रहे हैं। लोगों में सूचना की भूख बढ़ रही है। लोगों की आय का स्तर भी बढ़ने लगा है। आज दूर दराज के गांव व ढाणी में भी अखबारों की पहुँच है। आज आवश्यकता इस बात की है कि अखबार को सामाजिक मुद्दों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाया जाये। पक्षपात से रहित दलगत राजनीति से ऊपर उठकर पत्रकारगण

---

1. राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम – बी.एल. पनगड़िया, पृ. 125
2. हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव – जवाहरलाल कौल, पृ. 123

ऐसी खबरों, लेखों को प्राथमिकता दें जो सच के निकट हों और व्यापक जनसमुदाय के हितार्थ हो।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत ब्रिटिश साम्राज्य के साये में हुई, जिसमें भारतीय भाषा के पत्रों को बार–बार निशाना बनाया गया। लार्ड लिटन का 'गलघोंटू एक्ट' इस लिहाज से प्रमुख उदाहरण है। हिन्दी के अनगिनत पत्रकारों ने अपने खून–पसीने से हिन्दी पत्रकारिता के लिए संघर्ष किया जिसका परिणाम हमें आज दिखाई दे रहा है। आज हिन्दी की पत्रकारिता अपने शिखर पर है। व्यापक पहुँच और पाठक संख्या में भी वह सबसे आगे है। इसमें भी विशेष रूप से हिन्दी की क्षेत्रीय पत्रकारिता जिसमें राजस्थान पत्रिका का स्थान महत्त्वपूर्ण है। राजस्थान पत्रिका आज राजस्थान के प्रत्येक जिले से तो प्रकाशित हो ही रही है, देश के भी महत्त्वपूर्ण नगरों कोलकाता, सूरत, बैंगलूर, अहमदाबाद, चेन्नई आदि को मिलाकर देश के अनेक राज्यों से भी प्रकाशित हो रही है। क्षेत्रीय पत्रकारिता में रंगाई–छपाई और अत्याधुनिक तकनीक आ चुकी है। हिन्दी क्षेत्रों में आज अखबार लगातार लोकप्रिय हो रहे हैं। आज दूर दराज के गांव–ढाणियों में भी अखबार पहुँच रहा है। क्षेत्रीय मुद्दे केन्द्र में आने लगे हैं। हासिये के लोगों की आवाज अखबार के माध्यम से बाहर आ रही है। हिन्दी के क्षेत्रीय अखबार इसके वाहक हैं। भविष्य में इसका प्रसार–प्रचार और बढ़ेगा। अब हमें इनकी गुणवत्ता पर ध्यान देना चाहिए ताकि अंग्रेजी अखबारों का ये अखबार स्थाई विकल्प हो सकें। साथ ही, आज हम जिस दौर में रह रहे हैं इसमें हमारे पड़ोसी देशों में लोकतंत्र का दमन हो रहा है, सैनिक शासन के दौर में मानवाधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। ऐसे माहौल में अखबारों की भूमिका अधिक बढ़ जाती है ताकि इस प्रकार की समस्याओं से भविष्य में हमें ना जूझना पड़े।

अध्याय : दो

क्षेत्रीय पत्रकारिता का वर्तमान दौर

2.1 क्षेत्रीय पत्रकारिता बनाम राष्ट्रीय पत्रकारिता

2.2 उदारीकरण और वैश्वीकरण का दबाव

2.3 कार्यशैली
(मालिक–संपादक, संवाददाता अन्य संपादकीय कर्मी)

2.4 खबरों का प्रस्तुतीकरण
(आधुनिक तकनीक का प्रयोग, विषयवस्तु में बदलाव व अन्य)

2.1 क्षेत्रीय पत्रकारिता बनाम राष्ट्रीय पत्रकारिता

क्षेत्र उस भौगोलिक, प्राकृतिक व सांस्कृतिक स्थल को कहते हैं जो किसी दूसरे भौगोलिक, प्राकृतिक और सांस्कृतिक स्थल से अलग पहचान रखता है। क्षेत्रीय शब्द क्षेत्र से बना है जिसका अर्थ है क्षेत्र विशेष का। पत्रकारिता के सन्दर्भ में क्षेत्रीय का मतलब है किसी क्षेत्र विशेष की विशिष्टताएं उजागर करने वाली पत्रकारिता।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है, "राष्ट्रीय शब्द 'राष्ट्र' का विशेषण है और राष्ट्र अंग्रेजी शब्द 'नेशन' के पर्याय रूप में हिन्दी में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार राष्ट्रीय शब्द को 'नेशनलिस्टिक' के समीप रखा जा सकता है।"[1] राष्ट्र से एक सांस्कृतिक ईकाई का बोध होता है जिसमें भाषा और नृजातियता को एकता का कारण माना जाता है। पत्रकारिता के साथ भी ये शब्द लग रहे हैं और अपना विशिष्ट अर्थ दे रहे हैं।

आमतौर पर अंग्रेजी के अखबार जो महानगरों से प्रकाशित होते हैं वे राष्ट्रीय अखबार कहलाते हैं। इसके अलावा छोटे शहरों या कस्बों से प्रकाशित होने वाले अखबारों को क्षेत्रीय अखबार कहा जाता है। राष्ट्रीय अखबार के विषय में वरिष्ठ पत्रकार जवाहरलाल कौल ने लिखा है कि "सामान्यतः 'राष्ट्रीय' शब्द के दो आयाम हैं। एक अखिल भारतीय का परिचायक है, जिसका चलन पूरे देश में हो या जो पूरे देश को प्रभावित करता हो। दूसरा, जो मनोवृत्ति स्वभाव या विचार में राष्ट्रीय हो, क्षेत्रीय नहीं इसलिए राष्ट्रीय समाचार–पत्र वे दैनिक हो सकते हैं, जिनका व्यापक प्रसार हो, जो किसी एक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करते हों। भारत जैसे विशाल देश की विपुल जनसंख्या को देखते हुए तो 'राष्ट्रीय समाचार–पत्र' कहलाने के लिए एक दैनिक की कुल ग्राहक–संख्या 15–20 लाख तो होनी ही चाहिए।"[2]

हिन्दी के वरिष्ठ पत्रकार रामशरण जोशी, जवाहरलाल कौल और नंदकिशोर नौटियाल जैसे लोगों का मानना है कि क्षेत्रीय और राष्ट्रीय का यह भेद बेमानी है। साथ ही जिन्हें हम क्षेत्रीय कहकर महत्त्वहीन घोषित कर रहे हैं वही सही मायने में राष्ट्रीय भी है। नंदकिशोर नौटियाल ने लिखा है, "भाषाई पत्र–पत्रिकाओं की बिक्री संख्या भी बढ़ी है। खासकर क्षेत्रीय अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं की बिक्री तथाकथित राष्ट्रीय अखबारों की तुलना में कही अधिक बढ़ी है। क्षेत्रीय तथा भाषाई 'छापों' ने अंग्रेजी के छापों को बिक्री संख्या की दौड़ में इतना पीछे छोड़ दिया है कि अखबार अर्थात् 'छापे' (प्रिंट मीडिया) राष्ट्रीय कहलाने के काबिल नहीं रह गये हैं।"[3]

---

1. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी साहित्य कोश, पृ. 554
2. हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव – जवाहरलाल कौल, पृ. 145
3. संपा. डॉ. त्रिभुवन राय – जनसंचार माध्यम : चुनौतियाँ और दायित्व, पृ. 17

क्षेत्रीय या भाषाई छापे का महत्त्व दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। इसके महत्त्वपूर्ण होकर उभरने को रॉबिन जेफ्री ने इस प्रकार व्यक्त किया – "शहरों और गांवों में भारतीय भाषा के अखबारों ने पूंजीवाद और उपभोक्तावाद का मार्ग प्रशस्त किया। निश्चित रूप से इसके जरिए लोगों को तर्क–वितर्क करने और संघर्ष करने का हथियार प्राप्त हुआ और जनता से जुड़े विभिन्न पहलुओं जैसे जनाधार, जनहित और जनमत जैसे विचारों का प्रसार हुआ परंतु इसकी सीमाएं और संभवतः आम अस्वीकृति इसमें अन्तर्निहित थी। पहली बात यह है कि कभी–कभी इन एक दर्जन अखबारी घरानों के हित आपस में टकरा जाते हैं, परंतु हमेशा ऐसा नहीं होता। दूसरी बात सही है कि जैसे ही स्वामित्व का सकेंद्रण बढ़ता है वैसे ही घरानों की संख्या निश्चित रूप से कम होती चली जाती है। लेकिन इतना तो है ही कि समाचार क्रांति से जागरूक 'जनता' की संख्या में वृद्धि हुई और इसका असर भी दिखाई पड़ने लगा।"[1]

इन सबके बावजूद आज छापा–व्यवस्था कुछ ऐसी बनी हुई है कि इससे होनेवाला लाभ और इससे पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से तथाकथित राष्ट्रीय यानी अंग्रेजी अखबारों का ही बोलबाला है। यह एकदम बनावटी, कृत्रिम स्थिति है, जिसे बदलना भाषाई पत्रकारिता के व्यापक हित में होगा।

भाषाई पत्रकारिता के साथ पक्षपात का व्यवहार भी एक समस्या है। नंदकिशोर नौटियाल ने लिखा है, "भारतीय भाषाओं के प्रति पुराना औपनिवेशिक व्यवहार आज भी बना हुआ है। आज भी अपने ही देश में हमें वही हिकारत के साथ 'लैंग्वेज' प्रेस या 'वर्नाकुलर' कहा जाता है। सरकारी मान्यता, खरीदी और सुविधाओं के मामले में भाषाएँ दोयम दर्जे का व्यवहार पाती है। इस व्यवहार को बरकरार रखने में, बल्कि और भी निरंकुश बनाने में हमारे देश के बड़े औद्योगिक घरानों का प्रमुख हाथ है। उनके विज्ञापन–बजट का लगभग 70 प्रतिशत इलेक्ट्रानिक मीडिया को चला जाता है। बाकी 30 प्रतिशत में आधा गुण और संख्या दोनों में कमतर अंग्रेजी की पत्र–पत्रिकाएँ कबाड़ ले जाती हैं। कुल के 15 प्रतिशत पर लगभग 14 भाषाओं की हिस्सा–बटाई होती है। यह घोर पक्षपात है।"[2]

भाषाई पत्रकारिता की दशा और उसके साथ होने वाले पक्षपात के बावजूद इसका विस्तार नई उम्मीद जगाता है और भारत के लोक के महत्त्व को उजागर करता है। जहाँ राष्ट्रीय अखबार एक वर्ग विशेष तक सीमित है वहीं भाषाई समाचार भारत की बहुलतावादी संस्कृति का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। इसीलिए क्षेत्रीय अखबारों का जन्म भी हुआ है। जिस प्रकार क्षेत्रीय आकांक्षाएं राजनीति में क्षेत्रीय पार्टियों के उदय का कारण बनी उसी प्रकार क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाएं क्षेत्रीय अखबारों के प्रसार के रूप में सामने आयी हैं।

---

1. रॉबिन जेफ्री – भारत की समाचार–पत्र क्रांति, पृ. 71–72
2. सम्पा. डॉ. त्रिभुवन राय – जनसंचार माध्यम : चुनौतियाँ और दायित्व, पृ. 17

सच मानें तो राष्ट्रीय बनाम क्षेत्रीय का बँटवारा भी कुछ निहित इरादों से किया गया है। ऐसा कुछ स्पष्ट मानदंड नहीं है जिस पर किसी समाचार पत्र को राष्ट्रीय या क्षेत्रीय ठहराया जा सके। 'अगर यह विभाजन कंटेंट्स के आधार पर किया जाता है तो जिन्हें आज क्षेत्रीय अखबार कहते हैं वे तथाकथित राष्ट्रीय अखबारों से बहुत पीछे नहीं हैं। उनके समाचारों में भी पूरे देश का, पूरी दुनिया का प्रतिनिधित्व देखा जा सकता है। बल्कि वे राष्ट्रीय समाचारों की दृष्टि से कहीं ज्यादा सम्पन्न हैं। अगर यह विभाजन केवल इस आधार पर किया जाता है कि जो दिल्ली या देश के अन्य महानगरों से प्रकाशित होते हैं, वे ही नेशनल हैं तो भी बात नहीं बनती है।"[1] राजधानी से ऐसे तमाम समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं जो दिल्ली या आसपास के शहरों तक सीमित हैं। क्या उन्हें नेशनल माना जाए ? अगर बंटवारा प्रसार और तकनीक को लेकर है तो अब यह बात किसी से छिपी नहीं रह गई है कि कई क्षेत्रीय कहे जाने वाले अखबारों ने भी इस सन्दर्भ में अपनी जमीन मजबूत कर ली है। राजस्थान पत्रिका और दैनिक भास्कर जैसे अखबारों के पास वह सारी नई तकनीक है जो किसी भी राष्ट्रीय अखबार के पास है।

कहना होगा कि यह जिम्मेदारी क्षेत्रीय समाचार पत्र बखूबी निभा रहे हैं। यह कहना कि अमुक अखबार इस मामले में राष्ट्रीय हैं कि उनका प्रकाशन कई राज्यों से हो रहा है, क्षेत्रीय समाचार पत्रों की तौहीन है। उनका यह स्वस्थ मूल्यांकन नहीं है।

सवाल यह है कि उनकी स्वीकार्यता का विस्तार क्यों हो रहा है ? जो समाचार पत्र राष्ट्रीय होने के दम्भ से चूर हैं उन्हें वैसी सफलता क्यों नहीं मिल रही है या फिर वे पंजाब संस्करण, उत्तर प्रदेश संस्करण या राजस्थान–हरियाणा संस्करण छापने के लिए विवश क्यों हो रहे हैं ? बहुत सीधी सी बात है, क्षेत्रीय पत्र जिन आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं उनकी लम्बे समय तक उपेक्षा की गई। तथाकथित राष्ट्रीय समाचार पत्रों ने उन लोगों की पीड़ाओं, आकांक्षाओं और उनकी समस्याओं की ओर देखने की जरूरत ही नहीं समझी जो कस्बों या गाँवों में रहते हैं।

इसी प्रकार राजनीति में भी क्षेत्रीय दलों के उदय होने के कारण मौजूद हैं। 'जिस प्रकार विभिन्न भाषायी और जातीय आकाक्षांओं की जिस तरह लम्बे समय तक उपेक्षा की गई उसका परिणाम क्षेत्रीय दलों के शक्तिशाली व्यवहार के रूप में सामने आया।'[2]

---

1. संपा. रामशरण जोशी – मीडिया और बाजारवाद, पृ. 58
2. यशवंत व्यास – अपने गिरेबान में, पृ. 37

उसी प्रकार क्षेत्रीय पत्र अगर शक्तिशाली होकर उभर रहे हैं तो इसके लिए उन्होंने क्षेत्रीय समुदायों–तबकों की आवाज ऊपर तक पहुँचाई है। उपेक्षित लोगों से जो लंबे समय तक हासिए पर थे, उनकी आम बोलचाल की भाषा में संवाद स्थापित किया। 'लंबे समय तक राष्ट्र जीवन में जिन्हें कोई पहचान नहीं मिली थी उन लोगों ने क्षेत्रीय समाचार पत्रों का अपने घर में स्वागत किया। क्योंकि वे उनकी जरूरतें पूरी कर रहे थे। राष्ट्रीय एकता के सूत्र को मजबूत करने में यह एक बड़ी पहल थी, जिसकी जरूरत राष्ट्रीय कहे जाने वाले अखबारों ने पूरी नहीं की।'[1]

क्षेत्रीय आकांक्षाओं को पूरा न कर पाने के कारण ही विभिन्न क्षेत्रों में अलगाववादी–पृथकतावादी शक्तियाँ मजबूत हुई हैं। ये कोई बाहर के लोग नहीं हैं अपने ही समाज के वंचित–उपेक्षित लोग हैं जो राष्ट्रीय संसाधनों में अपनी हिस्सेदारी से नाखुश हैं। इन आन्दोलनों की प्रकृति को समझे बिना इनका समाधान मुश्किल है। 'दमन और सत्ता की नोंक से इन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने का प्रयास हमेशा विफल रहा है। तात्कालिक रूप से भले ही इसमें सफलता मिली हो, दीर्घकालिक तौर पर इसका समाधान बिना संवाद के संभव नहीं है। और यह संवाद क्षेत्रीय अखबार कर भी रहे हैं।'[2]

संवाद का अभाव ही बड़ी से बड़ी समस्या पैदा कर देता है यही संवाद इस समस्या को हल भी कर देता है। देश में लोकतंत्र है, सत्ता का विकेन्द्रीकरण है तो व्यावहारिक स्तर भी यह विकेन्द्रीकरण दिखना चाहिए। सभी को सत्ता में भागीदारी मिलनी चाहिए। देश का कोई भाग या जाति–सम्प्रदाय यह न समझे की हमारी उपेक्षा की जा रही है। पंजाब की समस्या, कश्मीर समस्या और आजकल जारी पूर्वोत्तर राज्यों का अलगाव संवादहीनता स्थिति को दर्शाता है। यहां के लोग अपने आपको राष्ट्रीय संसाधनों से वंचित महसूस करते हैं। हमारे देश के 13 राज्यों में आज नक्सलवादी आन्दोलन अपनी जड़ें जमा चुका है। बहुत हद तक क्षेत्रीय अखबारों ने उपेक्षित क्षेत्रों या समुदायों की बात सुनी है और समाज के वंचित वर्ग को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य किया है।

हिन्दी के क्षेत्रीय अखबारों के सामने अनेक चुनौतियां हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की चुनौती, विज्ञापन पाने की चुनौती, पश्चिमी अप संस्कृति की चुनौती, बाजार की चुनौती

---

1. संपा. रामशरण जोशी – मीडिया और बाजारवाद, पृ. 59
2. जगदीश्वर चतुर्वेदी – युद्ध ग्लोबल संस्कृति और मीडिया, पृ. 40

आदि अनेक चुनौतियां क्षेत्रीय अखबारों के सामने हैं। वरिष्ठ पत्रकार आलोक मेहता ने लिखा है, "इलेक्ट्रानिक मीडिया ने हमें अप–संस्कृति दी है। हमारे बच्चे हमसे बेगाने हो रहे हैं उनका ग्लोबल बना दिया गया है। इसके कारण परिवार टूट रहे हैं। लेकिन जब पश्चिम आदर्श के अनुरूप विकास होगा तो ऐसी चितियां निश्चित रूप से बनेंगी।"[1] हमें वैश्वीकरण की चुनौती को स्वीकार कर उसे अपने अनुरूप ढालना पड़ेगा अन्यथा हमारे समाज का ढाँचा बिगड़ सकता है।

हम जितने ग्लोबल हैं, उतने ही लोकल भी हैं। यह स्वीकार करने में हमें कोई संकोच नहीं है। भारत में उदारीकरण की नीति को पूरी तरह से नहीं अपनाया गया क्योंकि इसके पीछे यहां का स्थानीय विरोध था जैसे वामदल व ट्रेड यूनियन आन्दोलन आदि। और इस अर्थ में उदारीकरण की नीति को बहुत से विचारक असफल मानते हैं। अशोक अग्रवाल ने कहा है, "ज़रा–सी नज़र डालें तो समझ में आ जायेगा कि अर्थ नीति में हम ग्लोबल तो हुए, लेकिन लोकल नहीं हो सके। बड़ों को तो लाभ मिला, लेकिन जो लगातार वंचित रहे, उन तक इस 'ग्लोबलाइजेशन' का कोई फायदा नहीं पहुँचा। बल्कि वे विकास यात्रा में एक पायदान और नीचे सरक गए।"[2]

यह स्पष्ट है कि समाचार पत्रों पर गम्भीर सामाजिक जिम्मेदारी होती है जो दायित्व को नहीं महसूस करते उनको पाठकों का वह सम्मान नहीं मिलता है जो मिलना चाहिए। इसी सन्दर्भ में पाठकों की भी प्रासंगिकता है। अखबार का मालिक अधिक से अधिक पाठक बटोरना चाहता है ताकि उसके अखबार की बिक्री बढ़ सके और अधिकाधिक विज्ञापन मिल सके। हमारे बाजार पश्चिम की नकल पर उन्हीं उत्पादों को बढ़ावा दे रहे हैं जो पश्चिमी संस्कृति के पोषक हैं। ऐसी चीजें टिकाऊ कम होती हैं, महँगी अधिक होती हैं। यह फैशन का दौर है। बाजार ग्राहक को तरह–तरह से भ्रमित करता है। 'यह कहना ठीक नहीं है कि पाठक की प्रासंगिकता केवल ऐसे ग्राहक की है जिसकी आवाज का कोई महत्त्व नहीं। बाजार की साँसों का उतार–चढ़ाव पाठक तक भी पहुँच रहा है। उनकी रुचियों को प्रभावित करने में प्रचार की किंचित भूमिका हो। लेकिन, यह कहना कि उन्हें बनाने–बिगाड़ने का काम नेपथ्य से संचालित हो रहा है, पाठकों के बुद्धि–विवेक को कम करके आँकना है।"[3]

---

1. पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा – आलोक मेहता, पृ. 30
2. संपा. रामशरण जोशी – मीडिया और बाजारवाद, पृ. 59
3. अरविन्द मोहन – पत्रकार और पत्रकारिक प्रशिक्षण, पृ. 163

क्षेत्रीय अखबार उन रुचियों के प्रति अधिक सचेत रहते हैं जो पाठकों को व्यापक तौर पर प्रभावित करते हैं। पाठकों की जरूरतें ही अखबार पूरी करने की कोशिश करते हैं। उनकी रुचियां, रहन–सहन, समाचार–पत्रों का कलेवर, कन्टेंट आदि पाठकों को ध्यान में रखकर ही बनाया जाता है। आज अखबार अपने सर्वे द्वारा पाठकों की रुचि जानना चाहते हैं। पाठक किस तरह की खबरें पसन्द करते हैं, क्षेत्रीय खबरों को अधिक महत्त्व देते है या राष्ट्रीय खबरों को। अखबार उन्हीं की रुचि को ध्यान में रखकर अपने संस्करण छापता है। राजनीति की खबरें अधिक अच्छी लगती हैं या फिल्मी, खेल या विजनेश आदि–आदि। जो क्षेत्रीय अखबार अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जितना स्वस्थ, सकारात्मक और पक्षधर है वह उतना ही राष्ट्रीय भी है। स्थानीयता के प्रति संवेदनशील होने मात्र से क्षेत्रीय पत्रों पर आरोप नहीं लगाया जा सकता कि वह राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण नहीं है।

क्षेत्रीय अखबार कभी भी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों, राष्ट्रीय आन्दोलन या बहस में कभी पीछे नहीं रहे। कोई बड़ी घटना देश में घटती है, कोई बड़ा निर्णय न्यायालय देता है या कोई प्राकृतिक आपदा आती है तो जो रवैया राष्ट्रीय अखबार अपनाते हैं वैसा ही आज क्षेत्रीय अखबार भी कर रहे हैं। राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, पंजाब केसरी, अमर उजाला जैसे अनेक अखबार अपनी भूमिका आज किसी भी राष्ट्रीय अखबार से कम नहीं निभा रहे हैं।

महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों पर किसी क्षेत्रीय पत्र ने कभी संकुचित दृष्टि का परिचय नहीं दिया है। अपनी सीमाओं के बावजूद इन सारे मामलों में जितनी उदारता क्षेत्रीय पत्रों की दृष्टि में है, वह तथाकथित राष्ट्रीय अखबारों में भी नहीं है। बाजार के अधिकांश विज्ञापन अंग्रेजी के अखबार हथिया ले जाते हैं इसलिए हर प्रकार से वे अपनी स्थिति मजबूत बनाये हुए हैं। पाठक संख्या आज हिन्दी अखबारों की अधिक है लेकिन विज्ञापन पाने में वे पीछे हैं। सुधीश पचौरी ने लिखा है, "विज्ञापन और पत्रकारिता का एक नतीजा यह भी है कि अंग्रेजी पत्रकारिता का वर्चस्व बढ़ रहा है। यह उसकी प्रसार संख्या के विपरीत है। प्रसार संख्या की दृष्टि से भारतीय भाषाएँ, खासकर हिन्दी अग्रेंजी से बहुत आगे हैं, लेकिन अंग्रेजी का वर्चस्व उसकी प्रसार संख्या के मुकाबले बढ़ा है। अंग्रेजी की विज्ञापन दरें अधिक हैं। इसका एक कारण भूमण्डलीकरण है, जिसकी भाषा अंग्रेजी ही है।"[1] अंग्रेजी अखबार किसी वाद का दंभ भरते हैं तो इसलिए की विज्ञापनों के मामले में उन्होंने अपनी स्थिति मजबूत कर रखी है।

---

1. सुधीश पचौरी – उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, पृ. 261

दुर्भाग्य की बात है कि विज्ञापन के मामले में सरकार भी उन्हें अधिक महत्त्व देती है। यही आर्थिक संकट क्षेत्रीय समाचार पत्रों को इस प्रतिस्पर्धा में पीछे ला खड़ा करता है। लेकिन अब क्षेत्रीय अखबार भी अधिक दिनों तक इस स्थिति में नहीं रहने वाले वे भी अपनी शैली में भारी बदलाव कर रहे हैं। समाचारों के अलावा जीवन के दूसरे विविध पहलुओं पर भी उनकी दृष्टि जाने लगी है। जहाँ तक देश की आत्मा का प्रश्न है वह वंचित समाज–तबकों में ही निवास करती है। और इनकी भाषा, शैली पर क्षेत्रीय अखबारों का ध्यान जा रहा है। क्षेत्रीय अखबारों की भाषा स्थानीय अधिक होती है। राजस्थान पत्रिका में वर्षों से राजस्थानी भाषा में झरोखा नाम से एक व्यंग्य छपता है। इसी प्रकार स्थानीय खबरों के शीर्षक कई बार यहां की प्रसिद्ध लोकोक्ति, मुहावरे या कहावतों से जुड़े होते हैं। इसके अलावा खबर के शीर्षक में स्थानीय भाषा के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं।

'आज पत्रकारिता में भी एक ऐसा सम्भ्रान्त तबका है जो अंग्रेजी का घनघोर समर्थक है अन्य देशी भाषाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक नहीं है।'[1] क्योंकि अंग्रेजी ने ही उन्हें पद–प्रतिष्ठा, सत्ता–प्रभुता, सम्मान और पैसा दिलाया है। भारत सरकार को भी दुर्भाग्य से उसी अंग्रेजी के माध्यम से विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में दस्तक देनी पड़ती है। अपनी भाषा को कमजोर किसी दूसरे ने नहीं किया हमने खुद किया है। ब्रिटिश साम्राज्य जो चाहता था वह इस देश के नेतृत्व ने किया है। उनका शासन–प्रशासन का तरीका, अधिकारीतंत्र की फौज, उनकी शिक्षा प्रणाली, उनकी भाषा–शैली सभी यहां के शासक वर्ग ने आँख बन्द करके अपनाई है। आज अंग्रेजी साम्राज्य खत्म हो गया तब भी अंग्रेजी संस्कृति मौजूद है।

लेकिन क्षेत्रीय पत्रों ने इस देश की बची हुई अंग्रेजीयत को जबरदस्त चुनौती दी है। क्षेत्रीय अखबारों ने ही आज लोक जीवन, परम्परा, संस्कृति और भाषा को स्थानीय स्तर के साथ उभारने का अवसर दिया है। हमारे विचार से क्षेत्रीय अस्मिता को उभारना भारत की विविधता के लिए लाभदायक रहेगा। क्षेत्रीय आकांक्षाओं की स्वस्थ अभिव्यक्ति ही देश की सभी समस्याओं, अस्मिताओं को सह–अस्तित्व के साथ ऊपर उठाने का अवसर दे सकती है और यही राष्ट्रीय एकता निरंतर विकास की भूमिका बनायेगी। यह जिम्मेदारी आज क्षेत्रीय अखबार उठा रहे हैं। उन्हें हतोत्साहित करने का कोई भी प्रयास भारत की

---

1. देवेन्द्र इस्सर – मीडिया : मिथ्स और मूल्य, पृ. 176

बहुजातिय संरचना वाले समाज के लिए घातक हो सकता है। अतः राष्ट्रीय और क्षेत्रीय का मुद्दा कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा उठाया जाता है जो कुछ विशेष लाभ पाना चाहते हैं। भारत की बहुलतावादी संस्कृति में विविधता की झलक मिलनी भी चाहिए और क्षेत्रीय अखबार उसके वाहक बनते हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि क्षेत्रीय व राष्ट्रीय अखबार का विभाजन उचित नहीं है, क्योंकि दिल्ली से प्रकाशित होने वाले कुछ अखबार बहुत सीमित संख्या में छपते हैं और क्षेत्रीय कहे जाने वाले अखबार इनसे कहीं अधिक संख्या में। कन्टेंट के स्तर पर भी कोई महान विभाजन इनमें नहीं है। क्षेत्रीय अखबारों में कुछ स्थानीय खबरों को स्थान अवश्य मिल जाता है। वैसे भी राष्ट्रीय कहे जाने वाले अखबार हर क्षेत्र की उपस्थिति दर्ज नहीं करा सकते।

2.2 उदारीकरण और वैश्वीकरण का दबाव

समकालीन विश्व में नव–उदारतावाद की प्रेरणा से तीन नीतियों को अपनाया जा रहा है जो एक–दूसरे के साथ निकट से जुड़ी हैं। उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण। राजनीति विज्ञान के विचारक ओम प्रकाश गाबा ने उदारीकरण की परिभाषा इस प्रकार दी है – "उदारीकरण वह नीति या कार्रवाई है जिसके अंतर्गत आर्थिक गतिविधियों की कार्यकुशलता और उससे मिलने वाले लाभ की अधिकतम वृद्धि के लिए उस पर से सरकारी प्रतिबंध और नियंत्रण हटा दिए जाते हैं या उनमें ढील दे दी जाती है ताकि बाजार की शक्तियों को बेरोक–टोक काम करने दिया जाए। इसके साथ यह विश्वास जुड़ा है कि मांग और पूर्ति तथा मुक्त प्रतिस्पर्धा के नियम व्यापारियों के लिए निजी लाभ और कामगारों के लिए प्रोत्साहनों का आकर्षण आर्थिक गतिविधि में कार्यकुशलता बढ़ाने के सर्वोत्तम साधन हैं।"[1]

भूमण्डलीकरण की नीति को 1980 के दशक में लोकप्रियता मिली है। यह नीति उदारीकीण और निजीकरण के तार्किक परिणाम को व्यक्त करती है। 90 के दशक से भारत में आर्थिक उदारीकरण का दौर शुरू होता है। उदारीकरण की प्रक्रिया विभिन्न देशों ने अपनी घरेलू परिस्थितियों के हिसाब से अपनाई। चीन ने 80 के दशक में ही आर्थिक उदारीकरण शुरू कर दिया था। भारत ने उसके 10 वर्ष बाद यह नीति अपनाई। उदारीकरण के माध्यम से विभिन्न देशों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं को खोला। 'भारत में उदारीकरण सीमित मात्रा में ही हो पाया। इसके कई कारण थे जिनमें प्रमुख हैं – वामपंथी विचारधारा वाली पार्टियों का विरोध, ट्रेड यूनियनों का विरोध और भारत की अन्य घरेलू मजबूरी भी थी।'[2] मसलन हमारे उद्योग विदेशी प्रतिस्पर्धा के समक्ष टिकने की स्थिति में नहीं थे। अखबार भी वैसे तो उद्योग ही है लेकिन अखबार के मामले में उदारीकरण सीमित मात्रा में ही हुआ। विदेशी विनिवेश की एक निश्चित मात्रा ही अखबार में लग सकती थी। इसके अलावा इलैक्ट्रानिक मीडिया में ज्यादा स्वतंत्रता मौजूद थी। यहां विदेशी पूंजी निवेश की मात्रा ज्यादा थी; लेकिन इस भेदभाव का कोई कारण कहीं नहीं दिया गया।

उदारीकरण का ज्यादा असर हमारे यहां आर्थिक क्षेत्र में ही हुआ। बाद में राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक क्षेत्रों में इसका प्रभाव देखा गया। अखबार भी उदारीकरण

---

1. राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा – ओमप्रकाश गाबा, पृ. 130
2. रामशरण जोशी – मीडिया विमर्श, पृ. 152

के प्रभाव में आये बिना नहीं रह सकते थे। तेजी से बदलती दुनिया और तेजी से बदलती खबरों की प्रकृति ने अखबार को भी प्रभावित किया। आज विदेश में होने वाली छोटी से छोटी घटना हमारे अखबारों में जगह बनाने में कामयाब हो रही है। वैसे भी अर्थव्यवस्था के हरेक पहलू वैश्विक स्तर पर जब आदान–प्रदान करने लगते हैं तब यह संभव नहीं है कि आप किसी महत्त्वपूर्ण विदेशी घटना को नजरअंदाज़ करें। आज विश्व की प्रमुख वित्तीय कम्पनियां, बैंक, उद्योग, विश्वविद्यालयों के शोध हमारे घरेलू अखबारों में अपनी जगह बनाने में कामयाब हुए हैं। इसका एक कारण यह भी है कि हमारे यहां उन सबको जानने की जिज्ञासा रखने वाले पाठक मौजूद हैं और यह भी उदारीकरण के माध्यम से ही संभव हुआ है।

लेकिन उदारीकरण ने भारतीय समाज को दोनों तरह से प्रभावित किया है। हम आज जिस वैश्विक दौर में जी रहे हैं वहां कोई सीमा रह नहीं गई है और अब सीमा लगाने या बनाने की सोचना अपने आपको हास्यास्पद स्थिति का पात्र बनाना है। लेकिन इसके फायदे व नुकसान दोनों हैं। निष्पक्ष रूप से देखा जाये तो फायदे अधिक हैं और वह भी भारत जैसे विकासशील देश के लिए तो निश्चित ही। इस विषय में दोनों तरह के विचार सम्प्रदाय के लोग मौजूद हैं।

आर्थिक उदारीकरण के बाद हमारे यहां औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली को खत्म किया जाने लगा। लाइसेंस प्रणाली के चलते कुछ वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने के लिए कुछ कम्पनियां एकाधिकार की स्थिति में थी अब वह एकाधिकार खत्म होने लगा। वैसे गुणवत्ता व कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए और अपने उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखते हुए लाइसेंस प्रणाली खत्म करना ही फायदे का कार्य है। एकाधिकार के चलते जिस वस्तु के उत्पाद बाजार में एक ही कम्पनी बनाती थी वह गुणवत्ता का ध्यान दिये बगैर मनमर्जी की कीमत वसूलती थी। यह उदारीकरण का ही लाभ है कि हमारे देश में दुनियां के सभी देशों के मुकाबले मोबाइल की दूरसंचार सेवा सबसे सस्ती है। हमारे देश में दूरसंचार की कुछ कम्पनियां सरकारी स्वामित्व में हैं जैसे महानगर टेलीफोन नगर लिमिटेड व भारत संचार निगम लिमिटेड तो बहुत सी कम्पनियां निजी हाथों में हैं जैसे – रिलायंस, आइडिया, टाटा, एयरटेल आदि। इस प्रतिस्पर्धा की स्थिति में उपभोक्ता को फायदा रहता है क्योंकि उसके पास विकल्प हैं जहां विकल्प है वहां स्वतंत्रता है। आज हम अपनी मन पसन्द कम्पनी का ग्राहक बन कर लाभ ले सकते हैं। इसी प्रकार यदि हमारे यहां विदेशी प्रत्यक्ष निवेश मीडिया के क्षेत्र में खुला कर दिया जाये तो इससे अखबारों में प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी

और कई मायने में यह उपभोक्ताओं के हित में हो सकता है। कुछ नुकसान भी हो सकता है लेकिन जब अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र को खोला जा रहा है और विश्व नागरिकता की अवधारणा जन्म ले रही है तो ऐसा करना आवश्यक भी हो जाता है।

मीडिया में भी अखबार और इलैक्ट्रानिक मीडिया में भेद किया गया है। 'विदेशी अखबारों के बाहर से यहाँ आने पर रोक लगाने के सन्दर्भ में एक अन्तर्विरोध बार–बार सामने आता है। यह है अखबारों को 'ना' करने और इलैक्ट्रोनिक मीडिया को 'ना' न कर पाने के बीच का अन्तर्विरोध, प्रकटतः यह विचित्र लगता है कि इलैक्ट्रोनिक मीडिया जहाँ बेरोक–टोक प्रवेश कर रहा है, वहीं 'प्रिंट मीडिया' को रोकना कहाँ तक तर्क–संगत है ?'[1] यदि यह रोक हटती है तो उपभोक्ताओं को अधिक विकल्प उपलब्ध होंगे, रोजगार के अवसर भी बढ़ सकते हैं और प्रतिस्पर्धा की स्थिति के चलते अखबारों की गुणवत्ता और कार्यकुशलता में भी वृद्धि हो सकती है।

भूमण्डलीकरण की अवधारणा को आर्थिक रूप से एक ऐसी प्रक्रिया कह सकते हैं जिसमें विभिन्न देशों के बीच निर्बाध आर्थिक संबंधों की ऐसी प्रक्रिया जो एक निश्चित और सर्वमान्य अंतरराष्ट्रीय शर्तों तथा नियमों से निर्देशित होती हो। वास्तविकता यह है कि भूमंडलीकरण ने अधिक मुक्त बहुपक्षीय व्यापार–व्यवस्था को फलीभूत किया, जिसमें शामिल सभी देशों के लाभ और हित साधन की बात की जाती है। यह वैसा ही शब्द बनता जा रहा है जैसे कभी कम्यूनिज्म और कल तक पूँजीवाद थे। एक नारा, एक विचारधारा, एक समरनीति और एक सपना भी, लेकिन यह है क्या, जिसे कुछ लोग पापवृत्ति, तो कुछ लोग मानव जाति के सुखद भविष्य का विराट् कार्यक्रम मानते हैं। सामान्यतः 'वैश्वीकरण विश्व के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक संबंधों, सहयोग और विनिमय को व्यापकता तथा गहराई देने की प्रक्रिया को कह सकते हैं। व्यवहार में यह विश्व–व्यापार को निर्बाध विस्तार देने की ही प्रक्रिया है; लेकिन कोई भी सरल धारणा व्यवहार में सरल नहीं रहती। दो देशों के आपसी रिश्तों के रास्ते में उन देशों की प्रभुसत्ता, देशी कानूनी परंपराएँ, भू–सामरिक प्राथमिकताएँ और साँस्कृतिक मान्यताएँ अवरोधकों की तरह आती रहती हैं।'[2] स्पष्ट है कि ऐसे अवरोधों से समझौता करना उन्हें लाँघना या बदलना किसी–न–किसी तरह पार करना आवश्यक है। इसलिए आर्थिक सहयोग और रिश्तों की गहराई तथा व्यापकता के दायरे में कहीं–न–कहीं राजनैतिक सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध भी आते हैं।

---

1. सुधीश पचौरी – साइबर–स्पेस और मीडिया, पृ. 64
2. जवाहरलाल कौल – हिंदी पत्रकारिता का बाजारभाव, पृ. 65

भूमंडलीकरण की आँधी और आर्थिक उदारीकरण की नीति के कारण विभिन्न राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीच छिड़ी बाजार की लड़ाई में विज्ञापन को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। विज्ञापन उद्योग आज खूब फल–फूल रहा है, दो वर्ष पूर्व के आँकड़ों के अनुसार, विज्ञापन पर प्रतिवर्ष 15 खरब डालर खर्च किए जाते हैं। भूमंडलीकरण के बाद इसमें अनुमान से अधिक उछाल आया है। भारत में तेजी से विकसित हो रहे विज्ञापन उद्योग ने राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद की श्रेष्ठता और उपयोगिताओं को संप्रेषण के तमाम सिद्धांतों के सहारे तथा तरह–तरह की अनेक अपीलों के माध्यम से व्यक्त करके उपभोक्ता की क्रयशक्ति को बढ़ाया है। आज उपभोक्ता कार्यक्रमों का आक्रामक एकीकरण, आकर्षक, उत्कृष्ट चमकदार पैकिंग, ईनामी प्रोत्साहन, मुक्त उपहार, फुटकर विज्ञापन – ये सब मुद्रित–चित्रित या मौखिक बिंबों के माध्यम से विज्ञापन के वैविध्यमय स्वरूप को उजागर करते हैं। व्यापार की लोकप्रियता का तेजी से हुआ फैलाव भी उपभोक्ता से संबंध कायम करने का महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो रहा है।

इस प्रकार आज विज्ञापन आधुनिक जीवन–शैली और बाजार संस्कृति की बड़ी शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में अपनी पहचान बना रहे हैं। 'विज्ञापन के बिना आज किसी भी व्यापार के फलने–फूलने की बात सोचना बेमानी है। उच्च तकनीक के विकास के साथ बहुआयामी स्वरूप धारण कर रहे विज्ञापन संसार ने नई सामाजिक प्रवृत्तियों और जीवनशैलियों के साथ नए किस्म के उपभोक्ताओं को पैदा किया है। किसी भी उद्योग का वजूद विज्ञापन पर टिका होता है। प्रिंट मीडिया के वर्तमान चरित्र–गठन में विज्ञापन की भूमिका रही है।'[1] यह कहना भी गलत नहीं होगा कि समाचार–पत्र समूहों की मिशनरी भावना को खत्म कर उद्योग की अवधारणा को साकार करने में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों के साथ–साथ विज्ञापन–संसार की भी प्रमुख भूमिका है।

वर्तमान दौर में विज्ञापन समाचार–पत्रों का अभिन्न भाग ही नहीं, बल्कि प्रिंट मीडिया की रीढ़ है। प्रिंट मीडिया का समूचा वजूद इन्हीं विज्ञापनों पर टिका है, क्योंकि आज अधिकांश प्रकाशन संस्थान मिशन भावना के कारण पत्रों का प्रकाशन नहीं करते, व्यवसाय की दृष्टि से करते हैं। विज्ञापन के अभाव में यह व्यवसाय केवल मुनाफा देने में ही असमर्थ सिद्ध नहीं होता, बल्कि घाटे का सौदा भी साबित होता है। इसलिए विज्ञापन के बिना वे अधिक समय तक जिंदा नहीं रह पाते। ऐसे पत्रों या पत्रिकाओं का अवसान असमय

---

1. कुमुद शर्मा – भूमंडलीकरण और मीडिया, पृ. 140

ही हो जाता है। 'इसीलिए आज विज्ञापन को पत्र–पत्रिकाओं की जीवनरेखा माना जाता है। यही कारण है कि आज के समाचार–पत्र अपनी परंपरागत राष्ट्रीय, सामाजिक भूमिकाओं को छोड़कर अधिक से अधिक विज्ञापनों को पाने की प्रतिस्पर्द्धा में नित नए रंग–ढंग अपना रहे हैं।'[1] प्रसार संख्या को बढ़ाने के लिए नई–नई योजनाएं बन रही हैं।

इस दौर के विज्ञापन मनुष्य के जीवन में अनावश्यक माँग को पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। यानी गैर जरूरी को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है कि वह बहुत जरूरी है। इससे एक नई बाजार संस्कृति पैदा करने की कोशिश की जा रही है। मशलन पुरानी फ्रीज के बदले में नई फ्रीज ले जायें। पुरानी कार के बदले नई कार व इसी प्रकार के अन्य आकर्षक ऑफर व उपहार पेश किए जाते हैं। उपभोक्ता इस भ्रम जाल में फंस भी जाता है।

अखबारों में अधिक से अधिक विज्ञापनों के प्रवेश ने समूचे प्रिंट मीडिया के आंतरिक और बाह्य कलेवर की संरचना को प्रभावित किया है। विज्ञान की होड़ में समाचार पत्र समूह के मालिक को नए हथियार उठाने के लिए विवश किया है। वे विज्ञापन बाजार पर कब्जा जमाने की अपनी मुहिम में नित नए पैंतरे और हथकंडे अपना रहे हैं।

जब अखबार की नीति बाजारवादी होने लगी तो संपादक की सत्ता कमजोर होने लगी। अखबार से जुड़े उद्योगपतियों का लक्ष्य संपादक की भूमिका में समाज को दिशा–निर्देशन देना नहीं था, बल्कि विज्ञापन बाजार से ज्यादा से ज्यादा पूँजी बटोरना था। इसीलिए उन्हें संपादक की कुर्सी पर कोई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों को चुनौती देनेवाले प्रबुद्ध चिंतक अथवा विचारक की जरूरत नहीं रह गई। अब उनकी लड़ाई सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय मुद्दों की लड़ाई न होकर बाजार की लड़ाई थी। इसीलिए उन्होंने घोषणा कर दी की समाचार पत्र एक ब्रांड हैं, जिसे बेचने की कला प्रबुद्ध संपादक को नहीं, मार्केटिंग सम्पादक को ज्ञात होगी। 'अब अखबार मालिकों द्वारा प्रकाशन समूह में संपादक की हैसियत के रूप में ऐसे व्यक्ति का स्वागत किया जाने लगा जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा गढ़े गए नए बाजार को समझने की क्षमता रखे।'[2]

आज अखबार की मुख्य आमदनी का स्रोत विज्ञापन ही है। मुनाफे के कारण ही समूचा प्रिंट मीडिया अपने वजूद की रक्षा कर पा रहा है। प्रेस उद्योग पनप रहा है। प्रिंट

---

1. श्रीपाल शर्मा – पत्रकारिता की रूपरेखा, पृ. 153
2. रॉबिन जेफ्री – भारत की समाचार–पत्र क्रांति, पृ. 74

मीडिया में विज्ञापनों के बढ़ते प्रसार ने व्यावसायिक गुणवत्ता में वृद्धि की है, लेकिन पत्र–पत्रिकाओं में निहित राष्ट्रीय हित की परिकल्पना पृष्ठभूमि में डाल दी गई है। 'विज्ञापनों पर अधिक से अधिक कब्जा जमाने के लिए पत्र–पत्रिकाओं के चिकने और रंग–बिरंगे आकर्षक पृष्ठ उपभोक्तावादी संस्कृति के संवाहक की भूमिका निभा रहे हैं।'[1]

विज्ञापन ने समाचार–पत्रों के मुखपृष्ठों से वैचारिक गंभीरता वाले मुद्दों की जगह छीननी शुरू कर दी है, वैचारिक सामग्री उपेक्षित हो गई है, विचारों का महत्व कम हो गया है, हिंदी के अधिकांश पत्र–पत्रिकाओं में साहित्य और पत्रकारिता का रिश्ता टूट गया है। यहाँ तक कि खबर से अधिक महत्त्व विज्ञापन को मिल रहा है। इसीलिए कभी–कभी बड़ी महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट या खबरें इसलिए रोक ली जाती हैं, क्योंकि विज्ञापन के कारण जगह नहीं बचती।

आज भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में प्रिंट मीडिया में प्रकाशित विज्ञापन भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माल को बेचने के लिए विश्वग्राम की परिकल्पना के अनुसार वैश्विक संस्कृति का ही सहारा लेते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कोई मूल्य नहीं होता। उनका एक ही उद्देश्य होता है – 'माल बेचो, पैसा कमाओ।'[2]

भारतीय प्रिंट मीडिया में अब राष्ट्रीय मुद्दे महत्त्वपूर्ण नहीं रह गए हैं। इसलिए वह भूमंडलीय मीडिया के प्रभाव और आतंक के तले अप्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवाद का ही हथियार साबित हो रहा है। वह भी साम्राज्यवाद के मोहक सूचना–संजाल के प्रभाव में है।

पत्रकारिता की ग्लेमरस छवि ने रविवारीय परिशिष्ट और पूरक पृष्ठों को चमकीला–भड़कीला बना दिया है। इन पृष्ठों पर समाज को गुमराह करने वाले विज्ञापनों और सस्ती कामुकता पैदा करनेवाले आभिजात्य वर्ग के अनपढ़ तथा गैर–जिम्मेदार तथा गलत–सही तरीके से कमाए गए पैसे का झूठा आडम्बर और मायाजाल रचनेवाले नायकों के चित्र मिलते हैं। कोई फैशन डिजाइनर किस तरह किसको चूम रहा है और किस राजनयिक की पत्नी किसके कंधे पर झूल रही है और कौन–सा व्यक्ति कौन–सी शराब किस तरह से पी रहा है। किसकी दाढ़ी कौन–सा करिश्मा पैदा कर रही है और कौन अपनी वृद्धावस्था को आवरण में ढकने के लिए प्लास्टिक सर्जरी करवा रहा है। किस कम्पनी के

---

1. देवेन्द्र इस्सर – मीडिया : मिथ्स और मूल्य, पृ. 76
2. रॉबिन जेफ्री – भारत की समाचार पत्र क्रांति, पृ. 75

जूते कितने टिकाऊ हैं और कौन कितने जूतों का इस्तेमाल करता है। इस प्रकार की जानकारी इन पृष्ठों पर खूब मिल जायेगी।

लेकिन आप ढूँढ़ते रह जाएँगे कि अंदर की सुन्दरता को कैसे निखारें, आत्मबल को कैसे बढ़ाएँ, चित्त का परिष्कार कैसे करें, किन लोगों का अनुसरण करें, समाज का भला कैसे करें, देश के बारे में कैसे सोचें ?

ग्लैमरस पत्रकारिता ने एक विध्वंसक रचनात्मकता को गले लगाया है, जिसमें उस पत्रकारिता को प्रश्रय दिया गया है, जो विश्वसनीयता और प्रामाणिकता की अवहेलना कर बाजारवाद के षड्यंत्रकारी नुस्खों से अनुमानों, दुराग्रहों, अफवाहों और चाटुकारिता से उपजती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि उदारीकरण की प्रक्रिया ने हिन्दी अखबार की भाषा, शैली, कथ्य और प्रिंट सभी क्षेत्रों में बदलाव किया है। विज्ञापन की होड़ के कारण अखबारों की प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। आज हिन्दी अखबारों की भाषा न 'लोकल' है न 'ग्लोबल' है। उदारीकरण से संचार तकनीक की उपलब्धता आसान हुई है, इससे अखबार को बड़ी–बड़ी घटनाओं की सूचना तत्काल और कम पैसा खर्च करके मिलने लगी है। प्रतिस्पर्धा पूंजीवादी व्यवस्था की विशेषता है। इसमें गुणवत्ता युक्त वस्तु या उत्पाद ही बाजार में टिक पाते हैं। आज अखबार भी एक उत्पाद की तरह हो गया है और प्रतिस्पर्धा से इसको फायदा ही होगा नुकसान नहीं।

2.3 कार्यशैली

(मालिक सम्पादक, संवाददाता अन्य सम्पादकीय कर्मी)

बाजारीकरण के दबाव ने सम्पादक की भूमिका को सीमित करने का कार्य किया है। न केवल बाजारीकरण ने बल्कि नई तकनीक ने भी आज सम्पादक का पहले वाला स्थान छीन लिया है। सामान्यतः सम्पादक को अखबार के मालिक से स्वायत्तता मिलनी चाहिए और उस पर किसी प्रकार का अनुचित दबाव नहीं डाला जाना चाहिए। इस तरह का विवाद भूमण्डलीकरण के बाद अधिक व्यापक होकर उभरा है। इसका भी कारण उपलब्ध है, क्योंकि भूमण्डलीकरण ने अखबार को तत्काल प्रभाव से बाजारवादी नीतियाँ लागू करने पर मजबूर कर दिया। सम्पादक इस कार्य के लिए उतनी तत्परता नहीं दिखाते, मालिक की अनेक महत्वाकांक्षाएं अखबार से जुड़ी होती हैं। शक्ति, पैसा और राजनीतिक, आर्थिक शक्ति हासिल करना। यहीं विवाद शुरू होता है।

आज बहुत से क्षेत्रीय अखबारों में सम्पादक–मालिक एक ही व्यक्ति है। जैसे दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका आदि प्रमुख हैं। ये लोग अखबार के माध्यम से राजनीतिक शक्ति पाने की लालसा रखते हैं। बड़े पदाधिकारियों और मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री से सीधा सम्पर्क रखते हैं। ऐसे में इनकी पत्रकारिता विषयक निष्ठा पर सवाल उठता है।

संपादक का पद महत्त्वपूर्ण, जिम्मेदारीयुक्त तथा सर्वोच्च होता है। 'कुछ समय पूर्व संपादक का कार्य केवल संपादकीय लेख लिखना ही होता था लेकिन वर्तमान समय में सहायक संपादक, उप संपादक, प्रेस रिपोर्टर और संपादकों के कार्यों की निगरानी करना भी संपादक का एक महत्वपूर्ण कार्य है। वह अपनी पूरी टीम से अच्छे से अच्छा काम लेने का प्रयास करता है और समाचार पत्र की नीति के अनुसार समाचारों के पाने व जुटाने के तरीकों को अपनाना है।'[1] इसीलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि संपादक में वे सभी गुण विद्यमान होने चाहिए जिससे वह अपने समस्त कर्मचारियों तथा सहयोगियों का सही मार्गदर्शन करा सके।

प्रत्येक समाचार पत्र के संपादक को चाहिए कि वह पाठकों की रुचि तथा परेशानियों को ध्यान में रखे तथा समाचार पत्र में उन सभी समाचारों को सम्मिलित करे जो

---

1. डॉ. रूपा मिश्रा – समाचार लेखन एवं सम्पादन, पृ. 63

आवश्यक हों। उपयुक्त चित्रों तथा तस्वीरों को प्रकाशित कर समाचारों के महत्त्व को बढ़ाना भी संपादक का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

सम्पादन का कार्य अत्यंत विशिष्ट कार्य है। इसमें भाषा, विषय–वस्तु, व्याकरण और वर्तनी संबंधी बातों का समावेश होता है। संपादक का कार्य समाज और सामान्य पाठकों के लिए उपयुक्त सामग्री उपलब्ध कराना है। प्रायः प्रकाशनार्थ प्राप्त सामग्री, लेख, रिपोर्ट, समाचार, पुस्तक सीधे प्रकाशन योग्य नहीं होते, उनमें पर्याप्त संशोधनों की आवश्यकता होती है जिसके फलस्वरूप आम जनता तक पहुंचने वाली पठन सामग्री को उन तक पहुँचाने से पूर्व उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उनके अनुरूप बनाया जाता है।

संपादक का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है इसलिए इस पद पर विराजमान व्यक्ति से निष्पक्षता, निडरता व पक्षपात विहीनता की उम्मीद की जाती है। इस बात को ध्यान में रखकर सम्पादकों के कार्यों के मूल्यांकन के सन्दर्भ में उठने वाले प्रश्नों पर यशवंत व्यास ने लिखा है, "कुछ प्रोफेशनल संपादकों के अपने निजी रुझान भी होते हैं और उनके चलते साथी पत्रकारों को ऐसे खेल का कई बार हिस्सा बनना पड़ता है, जिसका वे अंश नहीं होना चाहते थे। वह तो खेलकर ऊपर से निकल जाता है, बाकी हतप्रभ रह जाते हैं। सीधे संवाद में मालिक के साथ एक बात तो साफ रहती है कि, भई हमारी नीति यह है। आप ऐसे काम करना पसंद करेंगे ?"[1]

माना जाता है कि सम्पादक के कार्य निम्न दर्जे के छोटे अखबारों में होने की ज्यादा संभावना होती है। ऐसे समाचार के मालिक–संपादक अक्सर एक ही व्यक्ति होते हैं। ये ऐसे–ऐसे गोरखधंधे करते हैं कि बताया नहीं जा सकता। साल में एकाध अंक निकाल दिया और बस। ऐसे समाचार–पत्रों में जहां मालिक ही संपादक भी हों, पत्रकारों से अधिक स्वतंत्रता की अपेक्षा नहीं होती। हमारा मानना है कि यह स्थिति कोई आदर्शस्थिति नहीं है कि बड़े अखबार बड़े–बड़े उद्योगपतियों के हाथों में हों, लेकिन फिर भी सच्चाई यह है कि इन अखबारों में व्यक्ति अधिक स्वतंत्रता और सम्मान के साथ काम कर सकता है।

संपादक और मालिक का एक होना बहुत बार दूसरे कार्यों को प्राथमिकता देने लगता है जो पत्रकारिता के क्षेत्र से बाहर के हैं। रॉबिन जेफ्री कहते हैं, "यह विशिष्ट

---

1. यशवंत व्यास – अपने गिरेबान में, पृ. 117

व्यवसाय है जिसमें ताकत और धन दोनों का अद्‌भुत मेल है।"[1] वे यह भी मानते है। कि सत्ता दूसरे मोहरों के मुकाबले अखबार का मालिक ज्यादा ताकतवर होता है। अखबार से केवल धन ही नहीं मिलता, इससे मिलने वाले सम्मान, ख्याति और सामाजिक प्रतिष्ठा से इसके मालिकों को आत्म संतुष्टि का भी अहसास होता है। संपादक के मुकाबले मालिक का अहं ज्यादा बड़ा होता है।

वहीं दूसरी तरफ कुछ संचालक–संपादक मानते हैं कि वे बुनियादी तौर पर पत्रकार हैं, इसलिए संपादकों के साथ मत–वैभिन्य या सम्पादक की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप जैसे प्रश्न यहाँ कभी भी उपस्थित नहीं होते। नवभारत पत्र समूह के प्रधान संपादक स्वामी रामगोपाल माहेश्वरी कहते हैं, "प्रायः मालिक और संपादक एक ही रहने की प्रवृत्ति आंचलिक अखबारों में दिखाई दे रही है, लेकिन इसमें जरूरी नहीं कि पत्रकारिता प्रभावित हो।"[2] उनकी नजर में इस प्रवृत्ति का एक कारण यह है कि आज के मालिक प्रायः उच्च योग्यता सम्पन्न हैं।

हम देखते हैं कि जैसे–जैसे एक निर्लज्जता की संस्कृति का विकास होता है, वैसे–वैसे लज्जावान होने को एक अयोग्यता के रूप में भी पेश किया जाता है। सच्चाई यह है कि क्षेत्रीय हिंदी पत्रकारिता का स्वामी–संपादक संबंध उस तरह से व्याख्यायित करना मुश्किल होगा, जिस तरह राष्ट्रीय प्रतिष्ठानी अखबारनवीसी के सिलसिले में किया जा सकता है। यहां एक अलग अंदरूनी चक्र भी है, जिसमें संपादक होने का लाभ पत्रकारिता ठेकेदारी तथा स्वामी होने का लाभ सत्ता केन्द्रों में सीधी भागीदारी की मिलावट साथ–साथ करने की सुविधा प्रदान करता है।

इस प्रकार आज के दौर में आजादी से पहले ही मिशन भावना वाली पत्रकारिता अप्रासंगिक लगने लगती है। क्या आज के युवा पत्रकार साथी इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने अखबार मालिक के भाषण तक को नहीं छापा था। अखबार के मालिक रामानंद चट्‌टोपाध्याय ने हिंदू महासभा के गोवा अधिवेशन की अध्यक्षता की थी। किंतु चतुर्वेदी जी ने इस भाषण को छापना तो दूर इस पर एक विपरीत टिप्पणी संपादकीय में भी कर दी थी। इस टिप्पणी पर चट्‌टोपाध्याय जी ने कहा कि,

---

1. रॉबिन जेफ्री – भारत की समाचार–पत्र क्रांति, पृ. 108
2. यशवंत व्यास – अपने गिरेबान में, पृ. 118

"संपादक की हैसियत से पंडित जी अपने पत्र के लिए पूर्ण स्वतंत्र हैं।"[1] इतना जरूर था कि उन्होंने इस टिप्पणी का करारा उत्तर लिखा और वह भी 'विशाल भारत' में छाप दिया गया। इस तरह की घटनाएं संपादकीय स्वतंत्रता तथा प्रकाशक–संपादक संबंधों में एक नया कीर्तिमान स्थापित करती हैं।

लेकिन यह तो निश्चित है कि मालिक के संपादक बनने पर उनकी प्राथमिकताएं बदल जाती हैं। व्यक्तिगत संबंध भी सर्वोपरि होने लगते हैं। इस तरह की पत्रकारिता से समाचार पत्रों की साख पर खतरा मंडराने लगता है और उसकी क्षमताओं का भी दुरुपयोग शुरू हो जाता है। यह पत्रकारिता की गुणवत्ता से जुड़ा हुआ मशला भी है साथ ही इससे मूल्यहीनता की स्थिति को भी बल मिलता है। अखबार का उपयोग अब मिलें लगाने, छवि सुधारने, राजनीतिक पहुँच बनाने में किया जाने लगा है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि संपादक एक उच्च विचारक और यथासंभव योग्य व्यक्ति हो ताकि वह अपने कार्य का निर्वाह बिना किसी दबाव के कर सके। संपादक की सत्ता भी स्वतंत्र होनी चाहिए। मालिक का संपादक बनना पत्र की साख को गिराता है। हिन्दी की क्षेत्रीय पत्रकारिता में आज यह स्थिति देती है।

---

1. यशवंत व्यास – अपने गिरेबान में, पृ. 128

2.4 खबरों का प्रस्तुतीकरण

संचारक्रांति ने इस सदी के रंग–रूप को ही प्रभावित नहीं किया है, बल्कि वह इस सदी का भविष्य भी अपने में समेटे हुए है। आज संचार–क्रांति के जरिए नई सूचना तकनीक से राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक – सभी क्षेत्रों में जबरदस्त परिवर्तन आया है। मनुष्य की जीवन–शैली तथा उसके मूल्यों में जबरदस्त बदलाव इसी तकनीक की देन है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया और संचार–क्रांति के परिवर्तित परिवेश में प्रिंट मीडिया की अन्तर्वस्तु और कलेवर – दोनों में बदलाव का ग्राफ तेजी से ऊपर जा रहा है। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने सही कहा है, "मीडिया ने हमें सनसनीखेज सुर्खियों का आदी बना दिया है। इतिहास, कला, संस्कृति, राजनीति, घटना आदि सभी क्षेत्र में सनसनीखेज तत्त्व हावी हैं। सनसनीखेज सुर्खियां जनता के दिमाग पर निरंतर बमबारी कर रही हैं। आज मीडिया जनता को सम्प्रेषित ही नहीं कर रहा भ्रमित भी कर रहा है। यह कार्य वह अप्रासंगिक को प्रासंगिक बनाकर, पुनरावृत्ति और शोर के साथ कर रहा है।"[1] समाचार पत्रों में बहुआयामी बदलाव आये हैं। उनकी प्रकृति और स्वभाव बदल गया है। भूमंडलीकरण और नए संचार–उपकरणों ने हिंदी प्रिंट मीडिया के परिदृश्य को बिलकुल नया रूप–रंग प्रदान किया है।

प्रिंट मीडिया में समाचार संकलन से लेकर प्रकाशन तक में सूचना प्रौद्योगिकी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। सूचना तकनीक की निरंतर बदल रही स्थितियों में पत्रकारों ने भी प्रौद्योगिकी की इन जरूरतों को और समय की माँग को देख लिया है। उन्होंने सूचना–क्रांति से आए बदलाव को आत्मसात् कर उसके अनुरूप स्वयं को ढाल भी लिया है। 'इलैक्ट्रॉनिक मीडिया से प्रतिस्पर्धा और बाजार की लड़ाई में समाचार–पत्रों के स्वरूप में उच्च तकनीक की सहायता से बदलाव की दिशा देने का प्रयत्न बराबर चल रहा है।'[2]

नई सूचना तकनीक ने मुद्रण के क्षेत्र में गुणात्मक बदलाव ला दिया है। संचार के नए उपकरणों ने मुद्रण की प्रक्रियाओं द्वारा पत्र–पत्रिकाओं में त्वरित गति से छपने की व्यवस्था को संभव बनाया है। 'समाचार संकलन और पत्र के मुद्रण में कलम, कागज,

---

1. जदीश्वर चतुर्वेदी – युद्ध, ग्लोबल संस्कृति और मीडिया, पृ. 226
2. कुमुद शर्मा – भूमंडलीकरण और मीडिया, पृ. 132

टेलीप्रिंटर, टाइपराइटर, टेलीफोन, ट्रेलिंग मशीन, सिलेंडर, हैंड प्रेस, रोटरी मशीन, फोटो ग्रेत्योर, रोटो ग्रेत्योर, फोटो कंपोजिंग, ऑफसेअ आदि का जमाना बीत चुका।'[1] आज कंप्यूटर–ऑप्टिक, फैक्स, लैपटाप, इंटरनेट आदि सूचना के त्वरित आदान–प्रदान का जरिया है।

आज प्रिंट मीडिया में कंप्यूटर समाचार–संकलन और मुद्रण की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन गया है। विश्व भर की सूचनाओं और नवीनतम जानकारियों को समेटे यह आज समाचार–पत्रों के कार्यालयों में विद्यमान हैं। अब समाचार–पत्र कार्यालयों में सम्पादकों को कागज–कलम की जगह कंप्यूटर उपलब्ध कराया जाता है। पहले संपादकीय विभाग कंपोजिंग हेतु कंपोजिटरों पर आश्रित थे। कंपोजिंग हाथ से होती थी। फोटोटाइप मशीनों के युग में नया टाइप बनाने और उसे उभारने में लंबा वक्त लगता था। अब संपादक व संवाददाता अपनी खबरें और लेख कंप्यूटर पर स्वयं कंपोज करते हैं। कंप्यूटर ने डेस्क टॉप प्रणाली तथा आन लाइन प्रणाली के जरिए समाचार–पत्रों में कंपोजिंग, प्रूफ रीडिंग, पृष्ठसज्जा, समाचार–संकलन, फोटो संकलन आदि के काम को आसान कर दिया है।

अब आप विश्व के किसी भी कोने का चित्र अपनी कुर्सी पर बैठे–बैठे प्राप्त कर सकते हैं। यह सब पहले संभव नहीं था। इसी प्रकार विश्व में घटनेवाली घटना के साथ–साथ उसकी सीधी रिर्पोटिंग भी इंटरनेट द्वारा कंप्यूटर पर देखी जा सकती है।

प्रकाशन समूह इंटरनेट से जुड़कर अपने कंप्यूटर में विश्व की खबरें और जानकारियाँ लेकर अपने पत्र में इनको प्रकाशित कर सकते हैं। समाचार संकलन की प्रक्रिया इससे बहुत आसान हो गई है। इंटरनेट आज समाचारों के ढेर उपलब्ध करा रहा है। संपादक महोदय को अब प्रकाशन किसी पुस्तकालय तक जाकर किसी संदर्भ को देखने के लिए किताब के पन्ने पलटने की जरूरत नहीं है।

यह सब नई तकनीक के चलते ही संभव हो सकता है। 'अब विभिन्न स्थानों पर बैठे संवाददाता अपने पत्र को अपनी रिपोर्ट चंद मिनटों में भेज सकते हैं। कंप्यूटर में टेलीफोन लाइन जोड़कर वह अपने संपादकीय कार्यालय के कंप्यूटर में अपने समाचार को सीधे फीड कर सकते हैं।'[2] इसी तरह समाचार एजेंसियों की खबरें भी अब कंप्यूटर के मॉनीटर पर उपलब्ध हैं।

---

1. अरविन्द मोहन – पत्रकार और पत्रकारिक प्रशिक्षण, पृ. 164
2. रॉबिन जेफ्री – भारत की समाचार–पत्र क्रांति, पृ. 79

आज कंप्यूटर के माध्यम से अखबार में 'ऑन लाइन प्रणाली' में स्कैन सेवा भी उपलब्ध है। इसके अंतर्गत छायाचित्रों का संपादन, काट–छाँट बड़ी आसानी से हो जाता है। चित्रों को कंप्यूटर के मॉनीटर पर छोटा–बड़ा किया जा सकता है। उसमें रंग भरे जा सकते हैं। विभिन्न चित्रों को आवश्यकतानुसार जोड़ने का काम भी मिनटों में पूरा हो जाता है। चित्रों की काट–छाँट के अलावा कंप्यूटर पृष्ठ संयोजन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पृष्ठों का मेकअप, ले–आउट, फॉरमेट – सब कुछ कंप्यूटर के मॉनीटर पर संभव हो गया है। मुद्रण की नई पद्धति ने समाचार–संकलन, संपादन, मेकअब, ले–आउट, पृष्ठ–सज्जा आदि को कम श्रम, कम व्यय और कम समय में संभव बना दिया है।

उच्च तकनीक के कारण भारतीय प्रिंट मीडिया के बदलते परिदृश्य में पत्र–प्रकाशन जगत् के आंतरिक गठन में भी परिवर्तन हुए हैं। नई सूचना तकनीक और मुद्रण तकनीक ने व्यक्ति–श्रम को कम कर दिया है। अब उपसंपादकों की फौज की भी बहुत जरूरत नहीं रही। रिपोर्टरों की प्रासंगिकता भी घट रही है। सम्पादक का कद भी घटा है। राजकिशोर ने उचित ही लिखा है, "सम्पादक आज एक मरी हुई संस्था है, क्योंकि अखबार में लगी हुई पूँजी का आकार बढ़ता जा रहा है और बौद्धिक कृति की अपेक्षा शुद्ध व्यावसायिक उत्पाद ज्यादा होता जा रहा है। आधुनिक सम्पादक मूलतः समाज और पूंजी के बीच का सेतु है। जैसे–जैसे समाज का क्षय हो रहा है और पूँजी की पकड़ बढ़ रही है, यह सेतु कमजोर पड़ने या भरभरा कर टूट जाने को बाध्य है।"[1] सम्पादक की सत्ता को बचाने के लिए अखबार के सरोकार तय करने होंगे। पूंजी कमाने का चसका छोड़कर अखबार को मूल्यनिष्ठ पत्रकारिता की तरफ मोड़ना पड़ेगा, तभी सम्पादक, अखबार और समाज तीनों का भला होगा।

"आज तकनीक इतनी विकसित हो गई है कि अब अखबारों के संस्करण किसी और शहर में तैयार होते हैं तथा उपग्रह के जरिए भेजकर छापे कहीं और शहर में जाते हैं।"[2] अब इंटरनेट पर ही कई पत्र–पत्रिकाएं उपलब्ध हैं। देश–विदेश के मशहूर अख़बार आज पाठक घर बैठे अपने कंप्यूटर पर पढ़ सकता है।

इस प्रकार सूचना तकनीक के माध्यम से कंप्यूटर प्रणाली ने आज हिंदी प्रिंट मीडिया के पारंपरिक कलेवर को पूरी तरह नकारकर उसे नया कलेवर, नया रूप–रंग दिया

---

1. राजकिशोर पत्रकारिता के नये परिप्रेक्ष्य, पृ. 109
2. श्रीपाल शर्मा – पत्रकारिता की रूपरेखा, पृ. 80

है। क्षेत्रीय अखबारों ने भी इसे अपनाकर अपना कोशल दिखाया है। मुद्रण प्रणाली से संबंधित जटिलताओं से भी उसे मुक्ति मिल गई है। नई तकनीक ने उसे साफ–सुथरी और व्यवस्थित छपाई प्रदान की है और रंगीन चित्र तथा त्वरित सूचनाओं से भर दिया है। आज देश के क्षेत्रीय अखबारों के कलर पृष्ठ बम्बई में छपने वाले अखबारों के कलर पृष्ठ से भी सुन्दर और साफ हैं। यह सब नई तकनीक के चलते ही संभव हो पाया है।

सूचना तकनीक और भूमंडलीय समय–संदर्भों ने हिन्दी पत्रकारिता के स्वरूप और चरित्र को पूरी तरह बदल दिया है। आकर्षक साज–सज्जा और आकर्षक छपाई के लिए अधिक पूँजी की आवश्कता ने और पत्र–प्रकाशन मालिकों की व्यवसायवृत्ति ने पत्र–पत्रिकाओं को विज्ञापन बाजार का मुखापेक्षी बना दिया है। रेमंड विलियम्स ने ठीक ही कहा था, "सभी नए ढंग के संचार–उपकरणों का राजनीतिक नियंत्रण या प्रचार अभियान तथा व्यापारिक लाभ (विज्ञापन) के लिए दुरुपयोग होता है।"[1] यह सही है कि आज भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में कंप्यूटर तथा संचार के अन्य उपकरणों ने प्रिंट मीडिया के परिदृश्य को बड़ी तेजी से बदला है, लेकिन इस परिदृश्य में पत्रकारिता के पुराने मानदण्डों की जगह नए मानदंडों ने ले ली है। आज अखबार पर बाजार का दबाव है। उदारीकरण की प्रक्रिया में अखबार की प्रतिस्पर्धा भी बढ़ गयी है। आज पहले वाली मूल्य निष्ठा और मिशन भावना वाली पत्रकारिता नहीं रह गयी है, क्योंकि आज वो चुनौतियां भी नहीं हैं जो 60–70 वर्ष पहले थी। आज हमारे सामने आजादी प्राप्त करने का सपना नहीं बल्कि नये–नये अन्य खतरे हैं। अपसंस्कृति, पूंजी का वर्चस्व और उससे अखबार को बचाना आज की सबसे बड़ी चुनौती है।

भारतीय प्रिंट मीडिया में उपभोक्तावादी संस्कृति, उत्तर आधुनिक अपसंस्कृति तथा भूमंडलीकरण के प्रभाव और दबाव को नकारा नहीं जा सकता। यह सब संचार क्रांति और सूचना क्रांति के गठजोड़ से आगे बढ़ने वाली मीडिया की विशेषताएं हैं; क्योंकि सूचना क्रांति, संचार क्रांति भूमण्डलीकरण के ही उपकरण हैं।

नई तकनीक से आज हमें मीडिया के बदलते परिदृश्य में परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। आकर्षक रंगीन और जीवंत चित्रों में पत्र–पत्रिकाओं की साज–सज्जा में जो गुणात्मक परिवर्तन आया है, मुद्रण तकनीक में जो चमत्कारिक परिवर्तन आया है, उसके मायावी आकर्षण में हम यह आकलन करना भूल गए हैं कि ये परिवर्तन राष्ट्रीय, सामाजिक

---

1. रेमंड विलियम्स – कम्यूनिकेशन, पृ. 31

और मानवीय परिप्रेक्ष्य में कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। हम लगातार यह कहते रहते हैं कि सूचना तकनीक ने प्रिंट मीडिया का नवीनीकरण कर दिया है, पत्रों की प्रसार–संख्या बढ़ाई है। उनकी अंतर्वस्तु और कलेवर को बदला है : लेकिन हमें यह भी देखना है कि क्या इसी तरह का बदलाव वांछनीय है ? संचार–माध्यमों के चकित कर देने वाले बदलाव के पीछे कहीं कोई बड़ी रणनीति तो नहीं छिपी हुई है। रामशरण जोशी के अनुसार, "वृहत् स्तर पर, उत्तर साम्राज्यवादी पूँजीवादी या नव उपनिवेशवादी काल में संचार माध्यम पूँजीवाद की अग्रिम पंक्ति की सेना की भूमिका निभा रहे हैं। यह एक ऐसी सेना है जो विवेक का हरण करती है, भावनाओं को उद्वेलित करती है और उन्हें खास दिशा के लिए अनुकूलित करती है। इस सेना से घृणा नहीं, मोह पैदा होता है। क्रोध के स्थान पर अनुराग जन्म लेता है। त्याग की बजाय भोग्य व भक्षण की लालसा होती है। लोकनिष्ठा का स्थान निजनिष्ठा ले लेती है। सामाजिकता पर वैयक्तिकता हावी होती है, जनसमूह का विकल्प व्यक्ति की एक इकाई और मुक्ति की दासता बन जाती है।"[1]

आज वैश्विक परिदृश्य में सूचना क्रांति और संचार क्रांति साम्राज्यवादी, वर्चस्ववादी शक्तिशाली राष्ट्रों का औपनिवेशिक जाल साबित हो रही है। यह नव उपनिवेशवाद की जड़ है, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का हित साधक है। हरबर्ट आई. शिलर ने अपने व्यापक अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला है, "सामाजिक न्यासों, निजी संस्थाओं तथा विश्वविद्यालय कार्यक्रमों ने डावांडोल और विस्फोटक विश्वपरिस्थिति को ध्यान में रखते हुए सूचना पर नियंत्रण के अत्यावश्यक मुद्दों को गंभीरता से लिया है। सांस्कृतिक प्रमुख के अत्यंत फूहड़ पहलू पर न सिर्फ हमले बढ़ रहे हैं बल्कि उनका स्तर भी बढ़ रहा है। शासक वर्ग तथा उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों के लिए जरूरी है कि वे इन घटनाओं पर अपनी जानकारी और प्रतिक्रिया को बारीकी के साथ व्यक्त करें। संचार के क्षेत्र में शोध एक तरफ तो अपने दर्शकों और श्रोताओं की इच्छा का ध्यान रखतां है, उनमें उत्तेजना पैदा करने वाले प्रेरणा स्रोतों का विकास करता है तो दूसरी ओर वह अपने मुख्य प्रायोजक बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बेहतर हित साधन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप धारण कर चुका है।"[2] इसीलिए तृतीय दुनिया के देशों के अधिकतर अखबार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रचार–पत्र बनते जा रहे हैं। मीडिया का व्यावसायीकरण, उदारीकरण आज वक्त की जरूरत है, आज की विवशता है। इसे आज बड़ी सहजता से स्वीकार किया जा रहा है – "ऐसे वातावरण में भारतीय प्रेस न

---

1. रामशरण जोशी – मीडिया विमर्श, पृ. 83
2. हरबर्ट आई. शिलर – संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व, पृ. 30

तो आधुनिक प्रौद्योगिकी से परहेज कर सकती है और न ही पत्र–पत्रिकाओं को कुशल बनाने से कतरा सकता है। हिन्दी प्रेस के लिए यह और भी आवश्यक है कि वह इस मायने में व्यावसायिक हो कि पत्र–पत्रिकाएँ केवल धर्म–खाते का काम न करें, वे अपने पाँवों पर खड़ी हों। कुशलता का मायना ही यह होता है कि अर्थ, प्रौद्योगिकी और श्रम का अधिकतम लाभदायक इस्तेमाल किया जाए। धर्मार्थ चलनेवाले कार्यों की गुंजाइश समाज में हर समय रहनी चाहिए; ऐसा समाज संस्कृति और सभ्यता के निम्न पायदान पर होगा, जहाँ ऐसे कार्यों की गुंजाइश न हो, जिनके उद्देश्य व्यक्तिगत अर्थ–लाभ न हों, लेकिन समाज के अधिकतर कार्य धर्म और अर्थ – दोनों का मिश्रण होते हैं। उनका आर्थिक रूप से उपयोगी और कुशल होना भी आवश्यक है। इस दृष्टि से हिंदी समाचार–पत्रों को कुशल व्यावसायिक इकाइयों में बदलने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है।"[1]

निष्कर्षतः पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से आर्थिक संसाधन जुटाना एक व्यावसायिक विवशता हो सकती है; लेकिन कुछ व्यवसाय और पेशे ऐसे होते हैं, जो मानवीय मूल्यों और राष्ट्रीय हितों से जुड़े होते हैं। इस तरह के पेशे को शुद्ध लाभ–हानि की स्थिति से ऊपर उठकर देखना चाहिए। पत्रकारिता भी ऐसा ही व्यवसाय या पेशा है। लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा का दायित्व पत्रकार नहीं उठायेगा तो फिर किससे उम्मीद की जा सकती है ? इसलिए किसी भी तरह की नई क्रांति से उसमें आया वही बदलाव वांछित होना चाहिए जो जनाकांक्षाओं का सही प्रतिनिधित्व कर सके, जो पत्रकारिता के पेशे की पवित्रता पर आँच न लाए, जो पत्रकारिता में निहित दायित्वबोध और कर्त्तव्यनिष्ठा के भाव की रक्षा करे। दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी की क्षेत्रीय पत्रकारिता में इसका अभाव–सा ही बना हुआ है।

---

1. जवाहरलाल कौल – हिंदी पत्रकारिता का बाजारभाव, पृ. 152

अध्याय : तीन

राजस्थान पत्रिका का क्षेत्रीय पत्रकारिता में योगदान

3.1 पत्रिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व भौगोलिक विस्तार

3.2 पत्रिका का वैचारिक पक्ष

3.3 पत्रिका का वैशिष्ट्य

3.4 पत्रिका और व्यवसायिक हित

3.1 पत्रिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व भौगोलिक विस्तार

'राजस्थान पत्रिका' की शुरुआत 7 मार्च 1956 से श्री कर्पूरचन्द कुलिश के संपादन में एक सांध्य दैनिक के रूप में जयपुर (राजस्थान) से हुई। कुछ समय बाद यह सुबह के दैनिक के रूप में छपने लगी साथ ही सामग्री और पृष्ठों की संख्या भी बढ़ा दी गयी। आज यह राजस्थान का अग्रणी समाचार पत्र है। राजस्थान ही नहीं देश–विदेश में भी इसकी लोकप्रियता दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। आज पत्रिका मात्र जयपुर से ही नहीं बल्कि जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बीकानेर, सीकर, श्रीगंगानगर, भीलवाड़ा, अलवर, अजमेर, पाली, बांसवाड़ा से एक साथ मुद्रित हो रही है। यही नहीं राजस्थान के बाहर बेंगलूर, अहमदाबाद, सूरत, चैन्नई व कोलकाता से भी उसी समय मुद्रित हो रही है। यही कारण है कि राजस्थान पत्रिका आज एक राष्ट्रीय दैनिक के रूप में अपना स्थान बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ रही है।

राजस्थान पत्रिका सामाजिक सरोकारों से जुड़ा हुआ हिन्दी का एक अग्रणी दैनिक है। सामाजिक सरोकारों से जुड़ी गतिविधियों में पत्रिका का योगदान अविस्मरणीय है। बाढ़, भूकंप, अकाल व सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं में पत्रिका के माध्यम से न केवल आर्थिक योगदान दिया गया बल्कि उसके माध्यम से जनता को जागृत कर अपील भी की गई। इसके फलस्वरूप मुख्यमंत्री व प्रधानमंत्री राहत कोष में धन व अन्य सामग्री एकत्रित होने में बहुत मदद मिली। राजस्थान में जयपुर सहित अनेक शहरों में छोटे–छोटे कार्यक्रमों वृक्षारोपण, पुस्तक मेला, ट्रेडफेयर, ड्राईविंग लाईसेंस शिविर आदि न जाने कितने जन–सहयोग के कार्य पत्रिका निःशुल्क आयोजित करती है।

स्थानीय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में भी पत्रिका का योगदान महत्त्वपूर्ण है। जन–आन्दोलनों की दृष्टि से भी पत्रिका ने सराहनीय कार्य किया है जैसे राजस्थान का "मजदूर किसान शक्ति संगठन"[1] ने सूचना के अधिकार को लेकर व्यापक आन्दोलन चलाया तो पत्रिका में विषय सम्बन्धी विचारों के अतिरिक्त उस संगठन की आवश्यकता को अहमियत भी दिलवाने के लिए लेख देने के अतिरिक्त सूचनाएं और विषय सम्बन्धी खबरें निरन्तर छापी। इसी आन्दोलन के चलते लम्बे समय के बाद सूचना के अधिकार को कानूनी मान्यता मिल सकी है।

---

1. राजस्थान पत्रिका, 5 जनवरी, 1991, पृ. 6

राजस्थान पत्रिका पत्रकारिता के अलावा सामाजिक सरोकारों से जुड़े मुद्दों को उठाती रही है, समर्थन देती रही है। इसमें प्रमुख रूप से परिवार और उससे जुड़ी हुई समस्याएं, साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, नारी, विद्यार्थी, जन–आन्दोलन आदि से सम्बन्धित समस्याओं को भी पत्रिका ने प्रमुखता से उठाया है। विद्यार्थियों को अपने कैरियर के प्रति जागरूक करने हेतु पत्रिका ने जयपुर में "इंटरनेशनल एजुकेशन एण्ड कैरियर फेयर"[1] का आयोजन 29 जुलाई 2003 को कराया। 'एक मुट्ठी अनाज योजना' के तहत भामाशाहों की धरती राजस्थान में पत्रिका ने अकाल से पीड़ित जनता के लिए अनाज इकट्ठा करने के लिए एक जन–आन्दोलन खड़ा किया। कारगिल में शहीद परिवारों के लिए राजस्थान पत्रिका ने 'जनमंगल कारगिल शहीद कोष' बनाया जिसके माध्यम से हताहत परिवारों को सीधे धन राशि मुहैया कराई गयी। इसके अलावा अनेक कार्यक्रम पत्रिका समय–समय पर करती रही है। जैसे – 'एक व्यक्ति एक पेड़', 'जलाशयों की सफाई', ''लर्निंग लाइसेंस शिविर', 'पुस्तक मेला', 'अमृत जलम अभियान', 'हरयालो राजस्थान', 'हेल्थ फेयर', व 'फूड फेस्टिवल' आदि। बच्चों व महिलाओं के उत्थान से जुड़े अनेक कार्यक्रमों को भी पत्रिका ने प्राथमिकता दी है।

'राजस्थान पत्रिका' की शुरुआत 7 मार्च 1956 से श्री कर्पूरचन्द कुलिश के संपादन में एक सांध्य दैनिक के रूप में जयपुर से हुई। कुछ समय बाद यह सुबह के दैनिक के रूप में छपने लगी साथ ही सामग्री और पृष्ठों की संख्या भी बढ़ा दी गयी। आज यह राजस्थान का अग्रणी समाचार पत्र है। राजस्थान ही नहीं देश–विदेश में भी इसकी लोकप्रियता दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। आज पत्रिका मात्र जयपुर से ही नहीं बल्कि जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बीकानेर, सीकर, श्रीगंगानगर, भीलवाड़ा, अलवर, अजमेर, पाली, बांसवाड़ा से एक साथ मुद्रित हो रही है। यही नहीं राजस्थान के बाहर बेंगलूर, अहमदाबाद, सूरत, चैन्नई व कोलकाता से भी उसी समय मुद्रित हो रही है। यही कारण है कि 'राजस्थान पत्रिका' आज एक राष्ट्रीय दैनिक के रूप में अपना स्थान बनाने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ रही है।

राजस्थान पत्रिका की पाठक संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। राजस्थान में यह दैनिक भास्कर आदि सभी अखबारों से आगे निकल कर नम्बर एक पर पहुँच गई है।

---

1. राजस्थान पत्रिका, 29 जुलाई, 2003, पृ. 1

पत्रिका व दैनिक भास्कर के नवीनतम आंकड़े नवम्बर 2008 में प्रकाशित हुए। 6 नवम्बर 2008 को राजस्थान पत्रिका ने "राजस्थान पत्रिका फिर सिरमौर"[1] नामक खबर में बताया कि, "मुम्बई में चार नवम्बर को जारी भारतीय पाठक सर्वेक्षण की रिपोर्ट में राजस्थान पत्रिका को एक बार फिर से जयपुर संस्करण सहित राजस्थान का सिरमौर घोषित किया गया है।"[2] राजस्थान में पत्रिका के 1 करोड़ 36 लाख 33 हजार पाठक हैं। यह संख्या पिछले सर्वेक्षण से 3 लाख 43 हजार पाठक अधिक है। देश के टॉप के टॉप टेन हिन्दी अखबारों में भी पत्रिका 5वें नम्बर पर है।

ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन के हाल ही में जारी रिपोर्ट से भी प्रतियों की प्रसार संख्या के हिसाब से राजस्थान पत्रिका का दैनिक औसत प्रसार 11 लाख 62 हजार 555 प्रतियां है, जो राजस्थान में सर्वाधिक प्रामाणिक है। इस हिसाब से पत्रिका पाठक संख्या और प्रसार संख्या दोनों में अग्रणी है। पत्रिका की पाठक संख्या राजस्थान के दूसरे नम्बर के अखबार भास्कर से 12 लाख 32 हजार अधिक है।

"इंडिया रीडरशिप सर्वे – 2008 के अनुसार भास्कर समूह की पाठक संख्या देश में सबसे ज्यादा"[3] भास्कर ने अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी राजस्थान पत्रिका से इस सर्वेक्षण में 12.54 लाख पाठक अधिक होने का दावा किया है लेकिन इसमें भास्कर समूह के गुजरात से प्रकाशित 'दिव्य भास्कर' की पाठक संख्या भी जोड़ी गई है। अतः 'दिव्य भास्कर' की पाठक संख्या कम करने पर पत्रिका ही सर्वाधिक पाठकों वाला दैनिक अखबार राजस्थान में रह जाता है। वैसे अखबारों के दावे बहुत कुछ विज्ञापन पाने की होड़ से प्रेरित होते हैं। लेकिन इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि राजस्थान में 'राजस्थान पत्रिका' सबसे लोकप्रिय अखबार है। पत्रिका एक ईमानदार और उत्तरदायी अखबार है।

यहां यह सवाल उठता है कि अखबार के अधिक प्रसार–प्रचार और भौगोलिक दृष्टि से एक बड़े क्षेत्र में फैलाने के क्या फायदे हैं। अखबार के अधिक प्रचार के पीछे अपनी वैचारिक निष्ठा को लोगों के सम्मुख रखने के अलावा अधिक धन कमाना भी एक कारण हो सकता है। अधिक लोगों द्वारा पढ़े जाने वाले अखबार को अधिक विज्ञापन प्राप्त होते हैं। भारत के समाचार पत्रो के शोधार्थी रॉबिन जेफ्री ने लिखा है कि, "विज्ञापन पूंजीवाद का

---

1. राजस्थान पत्रिका, 6 नवम्बर, 2008, पृ. 1
2. वही, 6 नवम्बर, 2008
3. दैनिक भास्कर, 7 नवम्बर, 2008, पृ. 1,

अग्रदूत है। भारत में यह ऐसा लड्डू है जिसे खाओ तो भी तरसो, न खाओ तो भी तरसो। विज्ञापन पाने की होड़ में अखबारों ने अपना प्रसार गांव–गांव तक दूर–दराज के इलाकों तक किया और नई जागृति की संभावनाएं जगीं और पहली बार ज्यादा से ज्यादा लोग राजनीतिक गतिविधियों में शिरकत करने लगे और 'जनाधार' सक्रिय हुआ।"[1]

विज्ञापन पर अखबार इस कदर निर्भर है कि वह प्रत्येक भाषा के लिए अलग–अलग विज्ञापन शृंखला जारी करते हैं। रॉबिन जेफ्री लिखते हैं, "भारतीय भाषा के अखबार धीरे–धीरे विज्ञापनदाताओं को यह विश्वास और भरोसा दिलाने में कामयाब होने लगे कि यदि वे अपने उत्पाद के प्रचार–प्रसार के लिए केवल अंग्रेजी अखबारों पर आश्रित रहेंगे तो उन्हें नुकसान होगा और वे अपने कई उपभोक्ताओं तक नहीं पहुँच पाएँगे। 1991 में हॉरलिक्स (दूध में मिलाकर पीने वाला पाउडर) के उत्पादकों ने हिन्दी, बंगला, असमी, उड़िया, मलयालम और तमिल में लिखित और दृश्यात्मक विज्ञापन धड़ल्ले से निकाले। जे. वाल्टर थॉमसन के अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञापन समूह की एक भारतीय शाखा हिन्दुस्तान थॉमसन ने इन विज्ञापनों को तैयार किया थ। इस विज्ञापन शृंखला में इस बात पर बल दिया गया कि प्रत्येक भाषा और उनकी संस्कृति को ध्यान में रखकर विज्ञापन बनाना बहुत ही आकर्षक और लाभदायक होता है। सभी भाषाओं में हॉरलिक्स के विज्ञापनों का आधारभूत विषय एक ही रहा; घर, परिवार, सुरक्षा और स्वास्थ्य। उड़िया भाषा में बने विज्ञापन में शतरंज खेलते बच्चे दिखाए गए, मलयालम में दिखाया गया कि एक बच्चा एक मजबूती से अपने पिता का हाथ थामे हुए है और नारियल से खेल रहा है। बंगला में एक बच्चा स्लेट पर कुछ लिखता है और उसके माता–पिता खुशी से झूम उठते हैं और हिन्दी में एक नौसेना अधिकारी है जिसे उसकी पत्नी बच्चे को गोद में लिए निहार रही है। इस विज्ञापन में प्रत्येक भारतीय भाषा के लिए ही खासतौर पर शब्दों और चित्रों का इस्तेमाल पहली बार नहीं किया गया था। हॉरलिक्स 1940 के दशक से ही ऐसा करता आ रहा था।"[2] एक ही विज्ञापन विभिन्न भाषाओं में वहीं की संस्कृति को दर्शाते हुए दिए जाते हैं। राजस्थान पत्रिका भी अपने प्रदेश की विशेषताओं के विज्ञापन के माध्यम से स्पष्ट करती है जो अन्य प्रदेशों के लोगों के लिए भी आकर्षण का कारण रहते हैं।

उपरोक्त विवरण को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि अखबार के भौगोलिक विस्तार के पीछे अधिक विज्ञापन पाना मूल मन्तव्य होता है और यह उपभोक्तावादी संस्कृति का मूल चरित्र है। अधिक से अधिक धन कमाना इनका उद्देश्य रहता है।

---

1. भारत की समाचार पत्र क्रांति – रॉबिन जेफ्री, पृ. 48
2. वही, पृ. 49

3.2 पत्रिका का वैचारिक पक्ष

राजनीतिक विमर्श राजस्थान पत्रिका भारतीय संस्कृति और इतिहास के उज्ज्वलतम पहलुओं को रेखांकित करने वाला अखबार है। भारतीय भाषा, संस्कृति के प्रति पत्रिका का स्वाभाविक जुड़ाव रहा है। आजकल की राजनीतिक गतिविधियों को देखकर यह कहना मुश्किल है कि पत्रिका का वैचारिक दर्शन क्या है ? वैसे भी आजकल अखबार विचारों की दुनियां को अधिक पसंद नहीं करते क्योंकि व्यावसायिकता का जो दौर चला है वह सब पर भारी पड़ता है। अखबार का उद्देश्य अधिक से अधिक धन बटोरना रह जाता है। विचारधारा को अखबार तब तक ज्यादा तरजीह नहीं देते जब तक उनके अस्तित्व पर ही संकट न आ जाये। आजकल के "अखबार बाजार के विज्ञापन के दास होते हैं।"[1] गनीमत है संपादकीय पृष्ठ अभी बचा हुआ है। आजकल अखबारों के सभी पेजों पर विज्ञापनों की भरमार है।

पत्रिका में भारतीय संस्कृति, वेद, धर्म और आध्यात्म से जुड़े हुए तमाम मसलों पर विचार बेबाकी से व्यक्त किये जाते हैं। उपरोक्त विषयों को यहां चलताऊ ढंग से अभिव्यक्त न करके बड़े सटीक ढंग से विस्तार से कहने की छूट रहती है। 23 सितम्बर, 1991 के राजस्थान पत्रिका में वेद को समग्र जीवन–दर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। कर्पूरचन्द कुलिश जी ने लिखा है, "वेद ही इस देश की आत्मा है। यह देश शताब्दियों से अनगिनत आघातों–प्रत्याघातों के बाद भी अपने सम्पूर्ण वर्चस्व के साथ जिस स्थितरता, दृढ़ता और जीवटता के साथ खड़ा है, वेद की शक्ति ही इसका आधार है।"[1] साथ ही कुलिश जी ने यह भी कहा कि वेदों से संबंधित सभी मंत्र अर्थगर्भित हैं। मंत्रों से ही सिद्ध हो जाता है कि वेदों का वास्तविक स्वरूप क्या है ? उन्होंने तैत्रेयी ऋषि से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए बताया कि जितनी भी मूर्तियां, बिम्ब, मूर्त पदार्थ दिखाई देते हैं, सब ऋग्वेद से बनते हैं। जितनी भी गति, क्रिया स्पन्दन है, यजुर्वेद हैं। जितना भी तेज–तत्त्व है – प्रकाश है, वह सामवेद है और जो भी हम देखते हैं, अथर्ववेद से संचालित होतां है। उन्होंने बताया कि मन यजुर्वेद है। ऋग्वेद वाक् से बनता है। सामवेद प्राण से बनता है।

इसी प्रकार शेखावाटी के धार्मिक गांवों का वर्णन पत्रिका का विशेष आकर्षण रहे हैं। इनमें टांई गांव प्रसिद्ध है। बिशन सिंह शेखावत ने गांव की धार्मिकता के बारे में लिखा

---

1. सुधीश पचौरी – उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, पृ. 232
2. राजस्थान पत्रिका – 12 सितम्बर, 1991, पृ. 7

है कि, "गांव में चार मंदिर हैं। इन मंदिरों का पुनर्निर्माण इस क्षेत्र के ऋषि माने जाने वाले नारायण सिंह ने अपने आखिरी वर्षों में कराया था। इन चारों मंदिरों में ध्वनि विस्तारक यंत्र लगे हुए हैं। चारों के अलगं–अलग वार निश्चित हैं ताकि चारों लाउड स्पीकर का शोर गांव वालों को धार्मिक भजनों एवं प्रवचनों के प्रति अरुचि पैदा नहीं कर दे। मैं रात्रि में सोकर उठा उस समय पूरा गांव भक्ति संगीत की मधुर ध्वनि से धर्ममय हो रहा था।"[1]

पत्रिका में भारतीय संस्कृति, वेद, धर्म और आध्यात्म से जुड़े हुए तमाम मसलों पर विचार बेबाकी से व्यक्त किए जाते है। उपरोक्त विषयों को यहां चलताऊ ढंग से अभिव्यक्त न करके बड़े सटीक ढंग से विस्तार से कहने की छूट रहती है। इस अर्थ में राजस्थान पत्रिका उस राजनीतिक दल के निकट जान पड़ती है जो भारत और भारतीयता की बात करता है। 1991, 92, 93, 94 व 95 के अखबारों में भारतीय संस्कृति, मेले–त्योहार, वेदविज्ञान, भारत–पाक संबंध, भाजपा की एकता यात्रा, अटल–आडवाणी, भैरोसिंह शेखावत, मुरली मनोहर जोशी के वक्तव्यों को प्रमुखता से छापा है। भारत–पाक संबंध एक ऐसा विषय है जिस पर सबसे ज्यादा लिखा गया है। भारत का एक और विभाजन नहीं होने देंगे – भाजपा, मंदिर अयोध्या में ही बनेगा – भाजपा आदि–आदि।

उपरोक्त वक्तव्य पत्रिका में बार–बार छपे हैं। पाकिस्तान का बेजा इस्तेमाल भाजपा ने अपना जनाधार बढ़ाने के लिए किया है। वैसे इसमें कोई शक भी नहीं है कि पाकिस्तान की कार्यवाही भारत के प्रति सदैव द्वेषपूर्ण और दुर्भावना से ग्रसित रही है। भाजपा ने पाकिस्तान को बड़ा शत्रु दिखाकर फायदा भी उठाया है। भाजपा की एकता यात्रा में जोशी जी के पाक संबंधित कथन बार–बार आये हैं। पंजाब समस्या भी इस दौर की ज्वलंत समस्या रही है और अखबार में इससे जुड़ी खबरों ने अपना स्थान लगातार बनाये रखा है। चाहे वह आतंकी घटनाएं हों या पंजाब में चुनाव का समय।

राजस्थान पत्रिका को आम जन सामान्यतः भारतीय जनता पार्टी समर्थित अखबार माना जाता है। जबकि पत्रिका ने पिछली वसुन्धरा राजे सरकार के दौरान अनेक बड़ी–बड़ी अनियमितताओं का पर्दा–फाश किया है। पत्रिका ने वसुन्धरा सरकार के अनेक मंत्रियों द्वारा की गई गड़बड़ी या भ्रष्ट आचरण को जनता के सामने रखा है। पत्रिका की यह एक अनोखी विशेषता ही मानी जायेगी कि उसे सामान्यतः संघ और भाजपा नीति विचारधारा की समर्थक माना जाता है और वसुन्धरा सरकार के कार्यकाल में ही 'संघ'

---

1. राजस्थान पत्रिका – 20 अक्टूबर, 1991, पृ. 6

पत्रिका का 'बॉयकाट' भी करता है। 2 अक्टूबर, 2008 को ईद के दिन ईदगाह मैदान, दिल्ली रोड में नमाज के वक्त कुछ मुस्लिम संगठनों ने पत्रिका का बॉयकाट किया। उनका मानना है कि पत्रिका मुस्लिम समाज के साथ बराबरी का व्यवहार नहीं करती है। मुस्लिम संगठनों के बॉयकाट पर बात करने पर पत्रिका के कार्यकारी सम्पादक गोविन्द चतुर्वेदी जी कहते हैं, 'जो खबर है उसे हम छापेंगे चाहे वह हिन्दू के खिलाफ हो या मुस्लिम के।'[1] यह विचारणीय बात है कि समाज के दो कट्टरपंथी संगठन अलग–अलग कारणों से पत्रिका को अपना विरोधी मानते हैं और उसका 'बॉयकाट' करने की बात कहते हैं। श्री चतुर्वेदी जी कहते हैं कि – "जब संघ ने पत्रिका का 'बॉयकाट' किया। तब उसी दिन पत्रिका की पाठक संख्या 50 हजार बढ़ गयी थी।"[2]

मुस्लिम संगठनों के विरोध का कारण यह रहा कि उन्हें यह लगता है कि पत्रिका उनके लोगों का आतंककारी घटनाओं में अधिक नाम छापती है। इस मुद्दे पर चतुर्वेदी जी कहते हैं कि, "मैं राकेश का नाम तो छाप दूं और दीन मोहम्मद का नाम न छापूं यह कैसे हो सकता है। भारतीय सेना, पुलिस व अन्य संगठन (टी.वी., समाचार माध्यम) जो जो नाम हमें आतंककारियों के देते हैं हम उन्हें छापते हैं। हमें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता की वे हिन्दू हैं या मुस्लिम।"[3]

राजस्थान पत्रिका की यह विशिष्टता ही मानी जायेगी कि लोग जिसे उसका (पत्रिका का) समर्थक मानते हैं वे तथाकथित समर्थक ही राजस्थान पत्रिका को अपना हितैषी नहीं समझते।

राजस्थान पत्रिका देश की स्वाधीनता की लड़ाई और उसके बाद राष्ट्र निर्माण के विषयों पर सदैव मुखर रही है। देशप्रेम की भावना पत्रिका अपने पाठकों में अक्सर भरती रहती है। सामाजिक चेतना में साहित्य की भूमिका विषयक अपने आलेख में नन्द भारद्वाज ने कुछ ऐसी ही सुन्दर पंक्तियां लिखी हैं – "जो हिन्दुस्तान शताब्दियों तक बाहरी आक्रमणकारियों, छोटे–छोटे साम्राज्यों और देशी राजाओं के शासनकाल में टुकड़े–टुकड़े बिखरा रहा, उसे सम्राट अशोक के बाद पहली बार अंग्रेजों ने एक राष्ट्रीय इकाई बनाकर पूरे एक सौ नब्बे वर्ष तक लूटा और राज किया। इस औपनिवेशिक उत्पीड़न ने जहां एक

---

1. गोविन्द चतुर्वेदी, 3 अक्टूबर, 2008 (बातचीत के दौरान)
2. गोविन्द चतुर्वेदी, 3 अक्टूबर, 2008
3. वही, 3 अक्टूबर, 2008

ओर समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो दिया, वहीं दूसरी ओर देश के प्रत्येक प्राप्त में इस औपनिवेशिक दासता से मुक्त होने की एक व्यापक मानसिकता भी पैदा हुई।"[1] इस प्रकार बंगाल, उत्तरभारत, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडू आदि सभी प्रान्तों में अंग्रेजों के खिलाफ एक जबर्दस्त आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। पहली बार एक व्यापक राष्ट्रीय चेतना का ठोस स्वरूप उभरकर सामने आया। इस आन्दोलन में न केवल देश के शिक्षित समुदाय ने आवाज उठाई, बल्कि बड़े औद्योगिक नगरों में मजदूरों के संगठित आन्दोलन हुए, ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों ने खुलकर स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया।

राजस्थान पत्रिका धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक मूल्यों को महत्त्व देती रही है। ब्रिटिश साम्राज्य की कूट नीति ने भारत का विभाजन किया और इसे गहरे घाव दिये। नन्द भारद्वाज ने लिखा है कि, "15 अगस्त सन् 1947 को अंग्रेज हिन्दुस्तान में देश–विभाजन का एक आखिरी दांव खेलकर लौट गए। उस एक दांव से, जिसकी शुरुआत वे बहुत पहले बंगाल के विभाजन से कर चुके थे। समूचे देश में साम्प्रदायिक कटुता की जो आग लगा गए, वह आग तभी से भीतर–ही–भीतर सुलग रही है। यह कितनी बड़ी त्रासदी है कि आज भी ये विभाजित हिस्से अपने सम्बन्धों को सहज नहीं बना पाए हैं।"[2]

पत्रिका सांस्कृतिक राष्ट्रदूत की भूमिका निभाता रहा है। यह इसके लेखों–सम्पादकीय व विचारा–गोष्ठियों से निकला सत्य है। 'भारत में सामाजिक–सांस्कृतिक अभिमान जरूरी' नामक लेख में डॉ. एम. शर्मा ने पं. दीनदयाल उपाध्याय के बलिदान दिवस 11 फरवरी के माध्यम से हमारे सामने उपाध्याय जी के दार्शनिक विचारों को रखा है। यह काफी ज्ञानवर्द्धक लेख है। सभी जानते हैं कि पं. दीनदयाल उपाध्याय 'अखण्ड भारत' की अवधारणा में विश्वास करते थे। लेखक ने लिखा है – "उन्होंने भू–सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा प्रस्तुत की। उनका व्यक्तित्व दलवाद से मुक्त था वे भारत की अखंड सांस्कृतिक एकात्मकता के द्रष्टा थे, अतः अखण्ड भारत की अवधारणा से कभी उनकी आस्था विचलित नहीं हुई।"[3] उपाध्याय जी भारत–पाक महासंघ के भी समर्थक थे। जैसा लेखक ने लिखा है, "दीनदयाल जीवन पर्यन्त इस सन्दर्भ में सक्रिय रहे। अपनी मृत्यु के तीन वर्ष पूर्व ही उन्होंने भारत के प्रखर समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया के साथ

---

1. राजस्थान पत्रिका, 20 अगस्त, 1995, पृ. 7
2. वही, 20 अगस्त, 1995, पृ. 7
3. राजस्थान पत्रिका, 10 फरवरी, 1994, पृ. 9

'भारत–पाक महासंघ' का संयुक्त वक्तव्य जारी किया था। वे इस मुद्दे पर समाज को दलीय सीमाओं से ऊपर उठकर संगठित करना चाहते थे।"[1] दीनदयाल उपाध्याय असुविधाजनक तथ्यों से किनारा नहीं करते थे। भारत में हिन्दू–मुस्लिम सवाल के यथार्थ को वे समझते थे। वे किसी भी प्रकार के साम्प्रदायिक पृथक्कतावाद एवं उसके तुष्टिकरण के खिलाफ थे। उपाध्याय जी का मानना था कि, "भारत का मुसलमान मजहबान्तरित हिन्दू समाज है। अतः अपने चिन्तन के चरम क्षणों में उन्होंने भारतीय मुसलमान को 'मोहम्मद पंथी हिन्दू' के नाते पहिचाना।"[2] उनकी इस पहचान ने हिन्दू की नकारात्मक परिभाषा पर चोट की।

हिन्दू की एक नकारात्मक परिभाषा स्थापित हो चुकी थी। गैर–मुस्लिम, गैर–इसाई भारतीय अर्थात् हिन्दू। राजनीति में रहकर भी वे राजनीति से निर्लिप्त थे और अपने आपको 'राजनीति में संस्कृति का दूत' मानते थे। इस प्रकार पत्रिका पं. दीनदयाल उपाध्याय के बताये मार्ग का अनुसरण करने का अवसर अपने पाठकों को उपलब्ध कराती है। पत्रिका न केवल उपाध्याय जी, बल्कि अन्य राष्ट्रवादियों – तिलक, विवेकानंद, दयानंद, महाराणा प्रताप, नेताजी सुभाष आदि के माध्यम से भी पाठकों को मार्गदर्शित करती रहती है और इस अर्थ में पत्रिका भारतीय संस्कृति के संवाहक का कार्य कर रही है।

हमारे समाज में अनेक बहस और विमर्श समय–समय पर चर्चा में रहे हैं। इनमें पत्रिका का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। पत्रिका ने इस सन्दर्भ में अनेक लेख और गोष्ठियों के माध्यम से बहस को सही दिशा प्रदान करने की कोशिश की है। इसी प्रकार की बहस गांधी जी और डॉ. अम्बेडकर को लेकर भी चलती रही है। भारतीय राजनीति में गैर–कांग्रेस, गैर–भाजपा की राजनीति करने वाली कुछेक क्षेत्रीय पार्टियों ने गांधी जी की आलोचना कर उसे सवर्ण समर्थक और दलित–पिछड़ा विरोधी साबित करने की कोशिश की है। इस बहस की शुरुआत कुछ उग्र विचारों वाली पार्टियों ने की है। उन्होंने कुछ नारे दिये जिनमें 'दलित–मुस्लिम भाई–भाई', हिन्दू जाति कहां से आई।' तिलक, तराजू और तलवार के गठबन्धन को ये चुनौती दे रहे हैं। इस बहस का जवाब प्रो. के.एल. कमल ने देने की कोशिश की है। प्रो. कमल ने लिखा है कि, "गांधी पर ये अनर्गल और मिथ्या आरोप

---

1. राजस्थान पत्रिका, 10 फरवरी, 1994, पृ. 9
2. वही, पृ. 9
3. वही, पृ. 9

नासमझी साजिश है। दलित और पिछड़े लोग सत्ता में भागीदारी के लिए कृतसंकल्प हों – यह सामाजिक परिवर्तन की दिशा में अभिनन्दनीय प्रयास है। इसके लिए गांधी पर आक्रमण कोई विवेकशील कदम नहीं है। गांधी पर आक्रमण तो उन जड़ों को ही काट रहा है जिनसे दलितों, गरीबों, पिछड़ों को पोषण मिलता है। अम्बेडकर बनाम गांधी एक बेबुनियाद, विवेकहीन एवं निरर्थक बहस है क्योंकि दोनों ही दलितोत्थान में मनसा–वाचा–कर्मणा जुटे थे। केवल उनकी प्राथमिकताओं में अन्तर था।"[1]

प्रोफेसर कमल ने अपने लेख के माध्यम से गांधी बनाम अम्बेडकर की धुंध को बहुत हद तक दूर करने का प्रयास किया है। उन्होंने कहा कि, "जो गांधी को गरीबों और दलितों के विरोधी के रूप में प्रस्तुत करने हैं उन्हें इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा क्योंकि यह तो अकाट्य सत्य का गला घोंटना है। यह तो गांधी की आत्मा है।"[2] प्रो. कमल ने अन्त में सार रूप में इस बहस का निचोड़ बताते हुए कहा है कि, "सच तो यह है कि केवल गांधी की वजह से कांग्रेस ने दलितोत्थान को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित किया। उच्च जातियों के नेतृत्व वाली कांग्रेस से यह मनवा लेना केवल गांधी जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व के बूते की बात थी।"[3] सार यह है कि दलितोद्धार की दृष्टि से गांधी बनाम अम्बेडकर कहना निरर्थक बहस में उलझना है, गांधी और अम्बेडकर कहना बौद्धिक चर्चा को सही परिप्रेक्ष्य में समझना है। अतः स्पष्ट है कि 'राजस्थान पत्रिका' ने इस प्रकार के अनेक लेखों के माध्यम से अनर्गल बहसों को सही दिशा देने की कोशिश की है और आम पाठक तक सच्चाई को पहुँचाने का प्रयास सदैव किया है।

भारत में कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार पी.वी. नरसिम्हाराव ने नब्बे के दशक में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की थी। आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया भारत में पहली बार शुरू हुई थी और इस पर भारतीय मीडिया में एक व्यापक बहस शुरू हो गयी थी। भारतीय मीडिया ने प्रायः इसे नकारात्मक रूप से ही लिया था और देश को आर्थिक गुलामी की तरफ ले जाने वाला कदम तक बताया गया था। 'राजस्थान पत्रिका' ने भी अपने अनेक लेखों व सम्पादकीय द्वारा इस प्रक्रिया को ठीक नहीं माना था लेकिन आज हम इसका सही विश्लेषण कर सकते हैं कि भारतीय मीडिया का संदेह पूर्णतया सही नहीं था और

---

1. राजस्थान पत्रिका, 17 जुलाई, 1994, पृ. 3
2. वही, पृ. 3
3. वही, पृ. 3

आर्थिक उदारीकरण वक्त की आवश्यकता थी। 'राजस्थान पत्रिका' ने 'आर्थिक दासता का खतरा' नामक लेख में नई आर्थिक नीतियों को देश के लिए हितकर नहीं माना। पत्रिका ने लिखा है, "नरसिंह राव सरकार ने नई आर्थिक नीतियों के तहत देशी व विदेशी उद्योगपतियों को रियायतें देकर वाहवाही तो खूब लूट ली हैं लेकिन इसके पीछे जो आर्थिक दासता का खतरा मंडराने लगा है उसकी अर्थशास्त्रियों ने गहरी चिन्ता प्रकट की है।"[1] इसी प्रकार अन्य लेखों के माध्यम से भी पत्रिका ने उदारीकरण की प्रक्रिया पर प्रश्न चिह्न लगाये हैं।

'राव सरकार की अर्थ नीति और भारतीय जनता' नामक लेख में बलराज मेहता ने लिखा था कि, "उच्च और मध्यम वर्ग को यह उम्मीद रहती है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से जो विकास होगा उसका कुछ लाभ उन्हें भी मिल जाएगा और आधुनिकतम तकनीक आसानी से भारत में आ जाएगी।"[2] यह सही है कि उच्च एवं मध्यम वर्ग को इस प्रक्रिया का लाभ अधिक मिलता है लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसका लाभ कालान्तर में निम्न तबके को भी प्राप्त होता है। विश्व प्रतिस्पर्धा में ठहरने के लिए हमें उच्च तकनीक हासिल करना भी जरूरी होता है। मेहता जी ने आगे लिखा है कि, "राव डालर से इतने सम्मोहित हैं कि वे यह बात समझना ही नहीं चाहते कि भारत की जनता को डालर नहीं चाहिए। उसे तो आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएं उचित मानों पर चाहिए।"[3]

यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि सरकार कब तक आवश्यक वस्तुएं उचित मूल्य पर प्रदान करेगी ? इससे बेहतर होगा उस जनता को इस योग्य बनाया जाये कि वह अपना कारोबार कर सके। उच्च तकनीक का उद्देश्य भी यही है कि हम अपना रोजगार उत्पन्न कर सकें और विश्व प्रतिस्पर्धा में टिक सकें। डालर पर इतनी नाराजगी क्यों ? जब डालर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा है और बड़े व्यापारिक लेन–देन डालर में ही किये जाते हैं तो इसकी जरूरत तो बार–बार पड़ेगी। हमारा भुगतान सन्तुलन पक्ष में भी डालर के भण्डार के चलते ही आया है। इसी से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में भारत की साख भी बनी है। अतः आर्थिक उदारीकरण के मामले में पत्रिका ने जो आकलन किया वह उस वक्त की चिंताओं को तो व्यक्त करता है लेकिन यह बाद में स्पष्ट होता है कि आर्थिक उदारीकरण की जरूरत थी। चीन हमसे 10 वर्ष पूर्व इसी आर्थिक उदारीकरण के चलते अपनी तरक्की कर सका है।

---

1. राजस्थान पत्रिका – 25 फरवरी, 1992, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका – 6 जनवरी, 1995, पृ. 8
3. वही, पृ. 8

नब्बे के दशक में देश में आरक्षण (पिछड़ा वर्ग) आन्दोलन काफी तीव्र रहा। इस आन्दोलन ने राजनीतिक दलों को वोट बटोरने का एक मौका और दे दिया। दुर्भाग्य की बात है कि आरक्षण विषयक बहस सही दिशा में जाने की बजाय राजनीतिक हथकण्डा बन कर रह गयी और समाज के वंचित वर्ग को सिर्फ जाति–धर्म के नाम पर वोट डालने के लिए प्रोत्साहित किया गया। कोई भी राजनीतिक पार्टी समस्या के मूल में जाकर इसके हल के लिए प्रयास करती नजर नहीं आई। मीडिया ने भी आरक्षण आन्दोलन में अपना स्वार्थ साधा। राजस्थान पत्रिका ने 24 सितम्बर को सम्पादकीय 'गलत निर्णय'[1] में आरक्षण पर नरसिंहा राव सरकार की बैठक में राष्ट्रीय मोर्चा के नेताओं के सामिल न होने को गलत बताया। 27 सितम्बर को सम्पादकीय में पत्रिका ने आरक्षण को कटुता फैलाने वाला और गैर जरूरी कदम बताया। पत्रिका ने लिखा, "सरकारी सेवाओं में जाति के आधार पर आरक्षण से समाज के जातीय आधार पर बंट जाने का खतरा पैदा हो गया है।"[2] इसी प्रकार पत्रिका ने विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार के पुराने निर्णय कि पिछड़े वर्ग को 27 प्रतिशत आरक्षण मिले को भी गलत माना है। पत्रिका ने लिखा है – "विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार की नीतियों के कारण समाज में विभिन्न वर्गों के बीच टकराव का वातावरण बना था।"[3] किसी ने जातीय आधार पर आरक्षण का विरोध किया तो किसी ने आर्थिक आधार को ही उचित माना। मीडिया भी अपने हित में जो लगा उसे ही उचित बतलाता रहा।

'नई आरक्षण नीति' के नाम से 27 सितम्बर, 1991 को राजस्थान पत्रिका में संपादकीय लिखा गया। इसके पूर्व अनेक लेख लिखे गए थे, अनेक विचार छापे गए थे। इन्हें देखने पर यही लगता है कि पत्रिका ने इस मुद्दे को समझने की कोशिश ही नहीं की। बहुत ही सतही बातें व अवधारणाओं के आधार पर गोलमोल बातें और सिर्फ आरक्षण का विरोध ही किया। देश के कर्णधारों ने जब इस विषय में संविधान में कुछ प्रावधान किये हैं तो उनकी भी कोई सोच रही होगी, लेकिन इन बातों को नकार दिया गया।

मीडिया ने यही कहा कि इससे समाज बंट जायेगा। किसी ने यह समझाने की कोशिश नहीं कि कि उचित आधार पर आरक्षण से देश व समाज मजबूत होगा, बंटेगा नहीं। पत्रिका ने लिखा कि, "सरकारी सेवाओं में जाति के आधार पर आरक्षण से समाज के जातीय

---

1. राजस्थान पत्रिका, 24 सितम्बर, 1991, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका, 27 सितम्बर, 1991, पृ. 6
3. राजस्थान पत्रिका, 02 अक्टूबर, 1991, पृ. 6

आधार पर बंट जाने का खतरा पैदा हो गया है।"[1] पत्रिका आगे यह भी लिखती है कि "इतना तो सही है कि जातिगत आधार पर आरक्षण से सामाजिक जीवन में विकृतियां आएंगी।"[2]

बहस के दौरान बार–बार यह कहा गया कि आरक्षण देने मात्र से पिछड़ों का भला नहीं होने वाला, लेकिन इसके अलावा और उपाय किये जाने चाहिए। इसके उपाय क्या हो सकते हैं इस विषय पर पत्रिका मौन ही बनी रही। पत्रिका ने लिखा कि, "देश की अर्थव्यवस्था में उत्पादक भूमिका निभा सकने के लिए इन जातियों में क्षमता पैदा करें।"[3] लेकिन बिना अवसर के क्षमता कैसे पैदा हो सकती है ? यह भी सब जानते हैं कि क्षमता के विषय में दार्शनिक अंदाज में बातें करना सच्चाई से मुंह फेरना है, क्योंकि क्षमता का इनके पास अभाव नहीं है अभाव है उचित–अवसर का। कोई जरूरी नहीं की सिर्फ आरक्षण से ही फायदा हो। अन्य सुविधाएं क्या हो सकती हैं इस विषय पर भी बात हो। हमारे विचार से अतिशय आरक्षण वाकई घातक हो सकता है लेकिन जो जरूरत मंद हैं और समाज के सबसे निचले पायदान पर हैं उसे यह लाभ मिलना चाहिए। आरक्षण के नाम पर कुछ दबंग जातियों को ही फायदा मिले यह सामाजिक न्याय की धारणा के विरुद्ध है। जो एक बार आरक्षण का फायदा ले चुका उसे भी आरक्षण से वंचित किया जाये। साथ ही आय की सीमा भी निश्चित होनी चाहिए और यह सीमा बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए। क्रीमीलेयर का प्रावधान ईमानदारी से लागू होना चाहिए। साथ ही पिछड़ों के अलावा सवर्ण जातियों के गरीब लोगों को भी इसका फायदा मिले तो आरक्षण की भावना के साथ न्याय हो सकेगा।

भारतीय राजनीति को प्रभावित करने वाले दो बड़े मुद्दे नब्बे के दशक में रहे एक पिछड़ा वर्ग आरक्षण आन्दोलन दूसरा बाबरी मस्जिद विवाद। पिछड़ा वर्ग आरक्षण आन्दोलन की हमने ऊपर बात की है। मन्दिर–मस्जिद का झगड़ा नया नहीं है, यह पुराना है और राजनीतिक मुद्दा है। इसका समाधान भी राजनीतिक ही हो सकता है। न्यायालय या अन्य दूसरा पक्ष कोई सन्तोष जनक हल निकाल पायेगा इसकी संभावना कम ही लगती है। राजनीतिक झगड़ों का समाधान दोनों पक्षों में वार्ता के आधार पर राजनीतिक पार्टियां ही कर सकती हैं, न्यायालय यह काम नहीं कर सकता। भारत के सन्दर्भ में मामला थोड़ा

---

1. राजस्थान पत्रिका, 27 सितम्बर, 1991, पृ. 6
2. वही, पृ. 6
3. वही, पृ. 6

अलग लगता है। यहां राजनीतिक पार्टियां वोट बैंक के आधार पर सोचती हैं और किसी नतीजे पर पहुंचने की झमता नहीं के बराबर रखती हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य जन न्यायालय की तरफ ही आशा की दृष्टि से देखता है। न्यायालय इस मुद्दे का हल दे भी देता है तो क्या जरूरी है कि सभी पक्ष इससे सहमत होंगे। अतः यहां आकर न्यायालय भी दुविधा में नज़र आता है। खैर, बाबरी मस्जिद मुद्दे पर मीडिया का क्या रूख रहा हम इसे देखते हैं।

राजस्थान पत्रिका ने इस मुद्दे का काफी कवरेज किया है। 6 दिसम्बर से पूर्व के घटनाक्रम को भी पत्रिका ने काफी फोकस किया और इसके बाद के मुद्दों को भी। 6 दिसम्बर के बाद जयपुर में भी अनेक जानें गयीं और पूरे देश में माहौल गड़बड़ा गया। जगह–जगह झगड़े–फसाद के समाचार मिले। साथ–साथ रहने वाले दो समुदायों में कटुता की भावना पनपी। 'विवादित ढांचा ध्वस्त'[1] के नाम से समाचार छपा, साथ में फोटो भी था जिसमें गुम्बद पर कार सेवक चढ़कर उसे ढहा रहे हैं।

पत्रिका से संस्थापक सम्पादक श्री कुलिश का लेख 'झगड़ा मन्दिर–मस्जिद का नहीं, राम और बाबर का है।'[2] कुलिश जी ने इस आलेख के माध्यम से भारतीय जनमानस के विचार को ही सामने रखा है। उन दिनों पूरा देश बाबरी मस्जिद पर बंटा हुआ दिख रहा था। हिन्दी के अखबार भी जनमानस के विचार के साथ ही खड़े थे। एक अच्छी स्थिति यह होती जब मीडिया कोई सकारात्मक सुझाव पेश कर जनमानस के विचारों में हां में हां न मिलाता क्योंकि यह मुद्दा राजनीतिक ही था। बाद में इसे सामाजिक बनाया गया और सामाजिक होने के बाद भी सभी हिन्दू मस्जिद तोड़े जाने के पक्ष में नहीं थे। देश में धर्म निरपेक्ष विचारधारा के पत्रकार–साहित्यकार इसी श्रेणी में आते हैं। कुलिश जी ने इसी लेख में आगे लिखा है, "अयोध्या में अब झगड़ा मंदिर–मस्जिद का नहीं रह गया है बल्कि यह मसला राम और बाबर का हो गया है। अगर यह मामला तूल पकड़ता है तो देश की जनता को राम और बाबर के बीच एक का चुनाव करना होगा।"[3] यहां चुनाव में विकल्प बहुत अधिक नहीं हैं या तो राम को चुने या बाबर को लेकिन इनके अलावा भी तीसरा रास्ता हो सकता है। धर्मनिरपेक्ष देश में धार्मिक आधार पर मत मांगना वैसे भी उचित नहीं है। इस तरह के विवादास्पद स्थल से लोगों का भावनात्मक लगाव हो सकता है अतः किसी भी पक्ष में खड़ा होने से एक पक्ष को नकारना होगा। इससे अच्छा होगा हम इस स्थल को स्थायी

---

1. राजस्थान पत्रिका, 7 दिसम्बर, 1992, पृ. 1
2. राजस्थान पत्रिका, 4 दिसम्बर, 1992, पृ. 1
3. वही, पृ. 1

न्यास के रूप में रखें, जहां कॉलेज, विश्वविद्यालय या बड़ा चिकित्सा संस्थान बनाया जा सकता है, जो मानवता की सेवा में सहायक होगा।

इतिहासकार इस मुद्दे पर बंटे हुए हैं और कोई निश्चित तिथि बताने में असमर्थ है कि किसने और कब यहां मस्जिद बनाई। अतः यह कहना कि 'बाबर के सेनापति मीर बाकी ने राम मन्दिर तोड़कर फरिश्तों के उतरने का पड़ाव बनाया जिसे आजकल बाबरी मस्जिद कहा जाता है, तभी से झगड़ा चालू है।"[1] ठीक नहीं लगता। माना तो यह भी जाता है कि मध्यकाल में अनेक मन्दिर तोड़े और लूटे गये लेकिन क्या इसका यह समाधान होगा कि अब हम ऐसा ही करेंगे। यदि हां तो फिर हम इन्हीं निरर्थक बहसों और झगड़ों में उलझे रहेंगे और अपना विकास बाधित करते रहेंगे।

राजस्थान पत्रिका ने 8 दिसम्बर 1992 को अपने सम्पादकीय में लिखा 'विश्वसनीयता को आघात'[2] यह काफी महत्वपूर्ण है। पत्रिका ने इस सम्पादकीय में मस्जिद तोड़ने की घटना की निंदा की और इसके लिए भाजपा और उसके अनुसंगी संगठनों बजरंगदल, विश्व हिन्दू परिषद आदि को जिम्मेदार ठहराया है। पत्रिका में लिखा गया, "अयोध्या में जो कुछ हुआ, वह खेदजनक और दुर्भाग्यपूर्ण है और इससे उत्पन्न हालात को समेटना एक मुश्किल काम हो गया है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों पर एक बड़ी जिम्मेदारी आ गई है। हिंसा को रोकना सबसे पहला काम है और इस मामले में सभी राजनीतिक दलों को सहयोग करना होगा।"[3]

राजस्थान पत्रिका ने वैसे इस घटना की निंदा की है, लेकिन इस आन्दोलन से पूर्व पत्रिका का रूख हिन्दुत्व की ओर झुका हुआ है। लेकिन अपने सम्पादकीय में इस घटना की निंदा कर पत्रिका ने एक सजग अखबार की भूमिका निभाई है।

राजस्थान पत्रिका ने जातिप्रथा, दहेज, बाल–विवाह, मृत्यु भोज, सती प्रथा आदि के प्रति काफी सजगता दिखाते हुए पाठकों को जागरूक करने का कार्य किया है। जात–पांत की पीड़ा किस कदर लोगों को हैरान और परेशान कर सकती है यह हम जयसिंहपुरा गांव की एक घटना के माध्यम से देख सकते हैं। इस गांव में बैरवाओं (हरिजन)

---

1. राजस्थान पत्रिका, 4 दिसम्बर, 1992, पृ. 1
2. राजस्थान पत्रिका, 8 दिसम्बर, 1992, पृ. 8
3. राजस्थान पत्रिका, 8 दिसम्बर, 1992, पृ. 8

की आबादी अधिक है। पत्रिका संवाददाता शिवकेश ने लिखा है कि, "खण्डर के दुकानदार मुसलमानों का दूध भले खरीद लें हम लोगों का दूध नहीं खरीदते। घी भी नहीं। हमें अछूत मानते हैं।"[1] शोषण की कहानी यहीं खत्म नहीं होती लोगों ने बताया की – "एक दूसरा आदमी हमारे यहां से तीन–चार रुपए में दूध खरीदता है। वही दूध जाकर ऊँचे दाम पर बाजार में बेच देता है। लोग क्या जानें कि वह हमारे ही यहाँ का दूध है। उस पर छाप थोड़े ही लगी रहती है ?"[2] मेहनतकश को पूरी मेहनत का पैसा नहीं मिला और बिचौलिये भी पैदा हो गये जो किस तरह से लूट कर खा रहे हैं। यह दर्दनाक वर्णन है। 21वीं शताब्दी में भी इस तरह की घटनाएं हमारे देश के गांवों में हो रही हैं। हमें राजस्थान पत्रिका को धन्यवाद देना चाहिए कि इस तरह की खबरें इसके माध्यम से हमारे पास पहुँच रही हैं। तमाम सरकारी प्रचार–प्रसार और विज्ञापनों के बाद भी स्थिति में बहुत बदलाव नहीं आया है, यह चिंता का विषय है जिसे पत्रिका में खबर बनाकर छापने के कारण एक ओर जनता को जागरूक करने की तो दूसरी ओर समाज से इन बुराइयों को मिटाने का प्रयास प्रशंसनीय है।

---

1. राजस्थान पत्रिका, 8 दिसम्बर, 1992, पृ. 7
2. वही, पृ. 7

3.3 पत्रिका का वैशिष्टय

राजस्थान पत्रिका भारत भर के दैनिक हिन्दी अखबारों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पत्रिका की विशिष्टता के अनेक आधार हैं। पत्रिका हिन्दी का पहला दैनिक अखबार है जिसने मुख्य पृष्ठ की प्रमुख खबर के साथ कार्टून देना शुरू किया। पत्रिका में कार्यरत कार्टूनिस्ट ये कार्टून बनाते हैं और उन्हें खबरों के हिसाब से छापा जाता है। यह शुरुआत 1993 में हुई। हालांकि मुख्य पृष्ठ के अलावा कार्टून छपने की प्रक्रिया राजस्थान पत्रिका के अलावा अन्य राष्ट्रीय अखबार पहले ही अपना चुके हैं। पत्रिका की भाषा उसका प्रिंट उसके कॉलम विशेषकर आओ गांव चलें, परिक्रमा नगर, प्रदेश की चिट्ठी, बात करामात, पोलमपोल, पुकार आदि इसकी विशिष्टता के आधार हैं।

राजस्थान पत्रिका ने स्व. श्री बिशनसिंह शेखावत के माध्यम से 'आओ गांव चलें' कॉलम शुरू किया था। इस कॉलम के माध्यम से पत्रिका का संवाददाता प्रतिदिन एक गांव का विवरण पत्रिका में छापता रहा है। इस कॉलम के माध्यम से गांव का इतिहास, व्यवसाय, मेले, फसल व गांव की अन्य अनेक विशेषताओं को रेखांकित किया जाता था। यह कॉलम पत्रिका में काफी समय तक छपा और बहुत लोकप्रिय रहा। इसकी लोकप्रियता का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वसुन्धरा राजे सरकार के कार्यकाल के दौरान राजस्थान के प्रत्येक गांव का इतिहास लिखने की एक महत्वपूर्ण योजना शुरू की गई तब सामग्री स्रोत के रूप में सबसे पहले 'आओ गांव चलें' को याद किया गया।

इस कालम के माध्यम से अलग–अलग संस्करणों में राजस्थान के अलग–अलग संभागों के गांवों का विवरण प्रतिदिन छपता था। बिशनसिंह शेखावत के अलावा अनेक संवाददाता बाद में इस कार्य में लगे।

राजस्थान पत्रिका की विशिष्टता इस बात में भी है कि उसने अपने समय की प्रमुख घटनाओं को गंभीरता से प्रकाशित किया व उन पर अनेक लेखमाला और संगोष्ठियों का आयोजन भी कराया। जैसे संस्कृति के महत्त्व पर जयपुर में हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ तिवारी की अध्यक्षता में 2 अप्रैल 1995 को एक संगोष्ठी आयोजित की गयी जिसमें तिवारी जी ने निष्कर्ष निकाला कि, "बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से जो अप–संस्कृति पनप रही, यदि उससे अपनी संस्कृति को बचाना है तो हमें संत कवियों के पास जाना होगा।"[1] इसी

राजस्थान पत्रिका – 2 अप्रैल, 1995, पृ. 9

प्रकार पं. विद्यानिवास मिश्र ने 16 जनवरी 1994 को हिन्दी पत्रकारिता पर विचार करते हुए संवाद के महत्त्व को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा, "पश्चिम के छोटे–छोटे गांवों में अखबार निकल रहे हैं, केवल शादी, जमीन की सूचना देने के लिए नहीं, बल्कि बातचीत का एक सिलसिला चलाने के लिए क्योंकि बातचीत कम हो गई है।"[1] इस प्रकार पत्रिका अनेक आयोजन कराकर सच को सामने लाने का प्रयास करती रही है। सन् 1990 से 1995 तक के समय में इस तरह की देश–विदेश में अनेक घटनाएं घटीं जैसे – राजीव गांधी की हत्या और आतंकवाद, पृथ्वी (पर्यावरण पर) सम्मेलन, नई उदारवादी नीतियाँ, भूमण्डलीकरण का विस्तार, बाबरी मस्जिद विध्वंश, देवराला सती कांड, पंजाब में आतंकवाद, हर्षद मेहता शेयर घोटाला, आरक्षण (पिछड़ा वर्ग को) आन्दोलन, खाड़ी संकट और तेल कूटनीति, विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के साथ–साथ राजस्थान में पड़े भीषण अकाल को भी राजस्थान पत्रिका ने प्रमुखता दी।

राजस्थान पत्रिका के दैनिक अंकों को देखने पर राजस्थान पत्रिका में छपे लेख व सम्पादकीय इसकी विशिष्टता को प्रदर्शित करते हैं। आओ गांव चलें 22 अप्रैल, 1992 के अंक में – 'बीगास – बाल–विवाह काफी प्रचलित' छपा है। यहां 'बीगास' गांव का वर्णन है। बीगास दौसा जिला मुख्यालय के निकट स्थित एक गांव है। बिशनसिंह शेखावत गांव की एक–एक विशेषता को इस तरह बयां करते हैं – "दौसा जिले में मीणा एवं गूजर दो कृषक जातियां प्रमुख रूप में हैं। दोनों ही काश्तकार जातियां हैं। मीणा खेती में पहले विशेष ध्यान देते थे – गूजरों को पशुपालन में रुचि रही है।"[2] शेखावत जी आगे लिखते हैं – "गूजरों में बाल विवाह काफी प्रचलित है किन्तु अब यहां धीरे–धीरे विवाह की उम्र बढ़ती जा रही है। पर शायद ही इक्कीस वर्ष के बाद किसी का विवाह यहां होता हो, इस उम्र के पहले–पहले ही विवाह करना पड़ता है।"[3] आओ गांव चलें कॉलम के माध्यम से राजस्थान के जितने गांवों का वर्णन पत्रिका में छपा है उनमें से सत्तर प्रतिशत गांवों में मृत्युभोज और बाल–विवाह की समस्या बताई गयी है। बीगास की महिलाओं के बारे में शेखावत जी लिखते हैं – "बीगास दौसा के बहुत करीब है। गांव की तीन सो महिलाओं में से करीब–करीब सभी निरक्षर हैं। इन महिलाओं को लोकतंत्र, शासन, संसद का भी कोई

---

1. राजस्थान पत्रिका – 16 जनवरी, 1994, पृ. 10
2. राजस्थान पत्रिका, 22 अप्रैल, 1992, पृ. 7
3. वही, पृ. 7

भान नहीं है। घर का मुखिया जो कहता है आंख बंद कर वोट दे देती हैं। यही कारण है कि चुनावों से गांव में जात–पांत उभर कर आई है। अधिकतर गूजर, गूजर उम्मीदवार को मीणा, मीणा उम्मीदवार को ही मत देते हैं।"[1] यह स्थिति आजादी की आधी सदी बीतने के बाद भी बनी हुई है जो चिन्ता का विषय है। साथ ही यह सरकारों की असफलता को भी प्रदर्शित करती है कि उन्होंने आजादी के बाद कोई रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की जो समाज से जाति–पांति की संकीर्णता, छुआछूत, बालविवाह आदि पर समाज को सही दिशा दे सके।

राजस्थान में बाल–विवाह और मृत्यु भोज के बाद एक प्रमुख समस्या सती प्रथा की भी रही है। आज बेसक कोई महिला सती न होती हो लेकिन सती का भय और मान्यता लोगों के दिलों में अभी भी समाया हुआ है। इसी कारण राजस्थान के गांव–गांव में सती माता के मंदिर बने हैं और किसी न किसी तरह लोगों के जीवन और व्यवहार को सती की मान्यता प्रभावित कर रही है। 'आओ गांव चलें' के 5 जुलाई 1991 के अंक में छपा है – "सावली–सती के भय से पक्के मकान नहीं बनते।' यहां सावली गांव जयपुर जिले की दूदू तहसील का वर्णन है। बिशनसिंह शेखावत ने वर्णन में लिखा है – "ग्राम सावली दूदू तहसील में मोजमाबाद के पास स्थित है। पूरे गांव में मुरड़–गार के कच्चे मकान हैं। यह पहला ही गांव देखने में आया है जहां के लोग पक्के मकान बनाकर रहना चाहते हैं, पर सती के श्राप से भस्म होने से भयभीत हैं। इस जमाने में हिम्मत कर एक परिवार ने पक्का मकान बनाना शुरू किया तो मकान आधा–अधूरा ही बनते ही बनाने वाले की मृत्यु हो गई। अब किसी को हिम्मत नहीं हो रही है कि इस विश्वास को कैसे डिगाये।"[2] कहते हैं कि सन् 1944 में सावली के महासिंह एवं महरामसिंह नाथावत–काकोड़ा के पास मराठों से युद्ध में लड़ने गये थे और उसी में वे शहीद हो गये। उनकी पत्नियां जो दोनों बुआ एवं भतीजी थीं युद्ध में मृत्यु का समाचार सुनकर गांव में जलकर सती हो गई थीं।

इस लोकविश्वास से गांव का विश्वास रुका हुआ है और प्रगति का रास्ता खुलने का नाम नहीं ले रहा है। इस एक विश्वास ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। जैसे – "कच्चे मकानों के कारण यहां के लड़कों को अच्छे सम्पन्न पैसे वाले सगे–सम्बन्धी भी नहीं मिलते। लोग कह रहे थे 'सगाई करबा हाला गांव में दड़बा देखकर ही भाग ज्याय।' कोई

---

1. राजस्थान पत्रिका, 22 अप्रैल, 1992, पृ. 7
2. राजस्थान पत्रिका, 5 जुलाई, 1991, पृ. 7

भी सम्पन्न व्यक्ति यह नहीं चाहता की उसकी लड़की इन कच्चे मकानों में दुःख पाये।"[1] इस प्रकार धार्मिक मान्यताएं और लोकविश्वास लगभग सभी गांवों में कुछ न कुछ मिल ही जाते हैं। चालाक लोग गांव के भोले–भाले लोगों को इन विश्वासों के आधार पर ठगने का कार्य भी करते हैं। सती माता के नाम पर गांव में कोई भी अफवाह फैलाई जा सकती है और लोग उसे मानने पर मजबूर हो जाते हैं। राजस्थान के दूर–दराज के गांवों में इसी तरह की अनेक मान्यताएं और लोकविश्वास प्रचलित हैं। सावली गांव में ही तेजाजी का मंदिर है और यहां यह मान्यता भी है कि सांप के काटे हुए व्यक्ति झाड़े लगवाने से ठीक हो जाते हैं। "गांव के बाहर तालाब की पाल पर तेजाजी (लोक देवता) का मन्दिर है। वहां दो लड़के सांप काटे का झाड़ा दिलवाने आये थे। दोनों के हाथों में सांप डस गया था। दोनों के हाथों पर कपड़े की कोथलियां बंधी हुई थी। एक बैल भी सांप काटे जाने के कारण तेजाजी के थान पर लाये थे। यहां काफी संख्या में सांप काटे हुए लोग आते हैं। कच्चे मकान, छान–झोंपड़ों तथा खेत खलिहानों में सांपो का डर हमेशा ही बना रहता है। डॉक्टर अभी इस गांव में नहीं पहुंचा है, इसलिए तेजाजी महाराज के विश्वास पर झाड़े लगवाते रहते हैं।"[2]

यहां सरकारी स्कूल आठवीं तक है उसकी इमारत सरकार ने जरूर पक्की बनवाई है लेकिन इसमें पढ़ाने वाले अध्यापकों की कमी है। इस प्रकार पत्रिका ने इस स्तम्भ के माध्यम से एक तरह से राजस्थान का सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास ही लिख दिया है। जहां वर्षों से कोई नहीं पहुंचा वहां पत्रिका के संवाददाता ने पहुंच कर उस गांव के बारे में सभी को परिचित कराने का कार्य किया है। इस कॉलम के माध्यम से गांव की समस्याओं की तरफ सरकार का भी ध्यान गया है।

राजस्थान पत्रिका में छपने वाले लेख व सम्पादकीय विविधतापूर्ण होते हैं। सामान्यतः राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है। जून 1991 में प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने कुर्सी सम्भाली थी। इस वक्त देश के समक्ष अनेक चुनौतियां थी। पत्रिका ने अपने सम्पादकीय में नरसिम्हा राव के राष्ट्र के नाम सन्देश में प्रमुख बातों को रखा था। पत्रिका ने यह संभावना व्यक्त की थी कि नरसिम्हा राव सरकार का रास्ता साफ नहीं है लेकिन यह संभावना निर्मूल साबित हुई और सरकार पूरे पांच साल

---

1. राजस्थान पत्रिका, 5 जुलाई, 1991, पृ. 7
2. वही, पृ. 7

चली। पत्रिका ने लिखा – "देश में महंगाई आसमान छू रही है, मुद्रा–स्फीति पर कोई नियंत्रण नहीं है, विदेशी भुगतान सन्तुलन पूरी तरह गड़बड़ा गया है।"[1] पत्रिका शंकाएं सही थी और इस सरकार ने उन्हें पूरा करने की कोशिश की। इसी प्रकार देश–विदेश में घटित घटनाओं को भी राजस्थान पत्रिका प्राथमिकता के साथ छापती है। इसका नाम जरूर राजस्थान पत्रिका है लेकिन इनके लेखों व सम्पादकीय का स्वरूप राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय ही है।

राजस्थान पत्रिका की शुरुआत करने वाले मूर्धन्य विद्वान–पत्रकार स्वर्गीय श्री कपूरचन्द कुलिश वेद विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित थे। वेदों को लेकर उन्होंने अपने विचार अनेक लेखों, संगोष्ठियों में व्यक्त किये। वेद को कुलिश जी समग्र जीवन दर्शन के रूप में देखते थे। कुलिश जी ने वेदों पर स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी – 'शब्द वेद', 'वेदविज्ञान' प्रमुख हैं। अन्य पुस्तकों में 'धारा प्रवाह' और 'सात सैकड़ा' प्रमुख हैं। वर्त्तमान समय में वेदों पर हो रहे अनेक प्रकार के आघातों से भी कुलिश जी व्यथित थे। उन्होंने लिखा है कि – "हमारी लोकनीति, सेनापत्य, राजदण्ड, समाजनीति, नागरिक नीति, राष्ट्र नीति, अर्थ नीति, मोक्ष नीति, शिल्प, कला, वाणिज्यादि सम्पूर्ण कार्यकलाप का आधार वेद था। दुर्भाग्य का प्रसंग है कि आज स्वतंत्र सार्वभौम भारत के संविधान तक में वेद का समावेश मात्र है। आज वेद को साम्प्रदायिक तक समझा जा रहा है। इसके लिए किसी को दोष देने के बजाय हमें गंभीरतापूर्वक आत्मालोचन करना होगा। हमें एक बार फिर यह संकल्प करना होगा कि वेद की राष्ट्रव्यापी प्रतिष्ठा हो और यह कार्य वेद की अर्थवत्ता को स्थापित करके ही किया जा सकता है।"[2] वेदों में भरे अच्छे ज्ञान को आम पाठक तक पहुंचाने का कार्य कुलिश जी आजीवन करते रहे। वेद का समर्थक होने मात्र से व्यक्ति बुरा नहीं हो जाता है जैसा कि आजकल के कुछ विद्वान समझते हैं। कुलिश जी का उदाहरण हमारे सामने है उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने सहकर्मियों के साथ जो व्यवहार किया वह इस बात का उदाहरण है कि वे कितने उदार और लोकतांत्रिक व्यक्तित्व के धनी थे। मैंने खुद राजस्थान पत्रिका पर जब कार्य करने का मन बनाया और इस कार्य हेतु मैं जब जयपुर पहुंचकर अपना शोध प्रारूप लिखने लगा उन्हीं दिनों एक दिन खबर मिली की कुलिश जी नहीं रहे। इसके बाद पत्रिका के विभिन्न अंकों में उनके साथियों के उनके साथ बिताये समय के संस्मरण पढ़ने

---

1. राजस्थान पत्रिका, 35 जून, 1991, सम्पादकीय, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका, 26 जनवरी, 1991, पृ. 13–14

को मिले तब मुझे यह एहसास हुआ कि मैं उन जैसे महान् व्यक्तित्व से मिल नहीं पाया। इस बात का दुख मुझे आज तक सताता है।

कुलिश जी जातिप्रथा के बढ़ते अभिशाप को राजनीति की देन मानते हैं साथ ही वैज्ञानिक आधार भी। उनका मानना है कि वर्ण व्यवस्था वैज्ञानिक थी और वक्त की आवश्यकता भी, लेकिन बाद में इसमें अनेक विकृतियां आयी हैं जिन्हें ठीक करने का प्रयास नहीं किया गया। कुलिश जी को उन लोगों से शिकायत है जो जातिप्रथा के नाम पर जाति को खत्म करना चाहते हैं। कुलिश जी यह भी मानते है। कि आज कोई भी वर्ग अपना नियत कर्म नहीं करता जो उसे प्राचीन समय में बताया गया था। कुलिश जी जाति को आर्थिक आधार पर देखते हैं और यही उसके जीवन का आधार है। "आजादी के बाद नेताओं का अभियान रहा है कि जातिप्रथा समाप्त हो जाय, परन्तु वह अधिक बढ़ती गई, क्योंकि वह रूढ़िमात्र नहीं है, बल्कि अर्थव्यवस्था के ठोस आधार पर खड़ी है।"[1] पत्रिका के अन्य विभिन्न कॉलम के माध्यम से भी देश में जातिवादी राजनीति पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता रहा है। 9 फरवरी, 1995 के लेख में डॉ. एम. शर्मा ने राजनीति में बढ़ते जातिवाद पर प्रश्न उठाया है। डॉ. शर्मा इस अभिशाप को संवैधानिक व्यवस्था की भी देन मानते हैं। उनका संकेत निर्वाचन पद्धति की तरफ है। डॉ. शर्मा ने लिखा है कि "डाले गए 30–35 प्रतिशत कुल वोटों का 20–25 प्रतिशत वोट प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति हमारी संसद या विधानसभाओं में जनप्रतिनिधि बन सकता है। जीतने के लिए इतने कम वोट पर्याप्त हैं, तब जनसेवा का कठिन कार्य करने की क्या जरूरत है।"[2] परिणामतः हमारे नेता व पार्टियां अब – सर्वजन हिताय' या 'राष्ट्र हिताय' चिन्तन करने के बजाय 'क्षेत्रीयहिताय', 'जाति हिताय' या 'सम्प्रदायहिताय' चिन्तन करने में ही अपना भला समझते हैं क्योंकि इनके माध्यम से 25–30 प्रतिशत तो प्राप्त किये ही जा सकते हैं।

'आओ गांव चलें' स्तंभ के माध्यम से एक अन्य समस्या जो प्रमुख है वह है – पानी का अभाव। पानी का अभाव सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करता है। रेड़ावद गांव में पानी के अभाव के कारण लोग कुंआरे रह जाते हैं क्योंकि कोई उन्हें अपनी बेटी देना पसन्द नहीं करता। पत्रिका संवाददाता शिवकेश इस गांव के बारे में बताते हैं कि यहां के लोग नहाने के लिए तरस जाते हैं। "एक जने तो कही दिया, 'होली के बाद सूं नहायो कूनी ?' वे न

---

1. राजस्थान पत्रिका, 1 मार्च, 1995, पृ. 10
2. राजस्थान पत्रिका, 9 फरवरी, 1995, पृ. 8

कहते तो भी और लोग तो कही चुके थे। तीन दिन के पहले नहाबा को सवाल कूनी ?"[1] गांव के लोग यह भी स्वीकार करते हैं कि "पानी की कमी की वजह सूं इहां के छोरान को ब्याव कून हावां ?" बताते हैं कि जाटों में ही अट्ठावन छोरे कुंआरे बैठे हैं।"[2] लोगों ने स्वीकार किया की "पहले नाई बैरवाओ की दाढ़ी नहीं बनाते थे पर अब बनाते हैं।"[3] गांवों में धीरे–धीरे बदलाव आ रहा है। पानी का यह अभाव राजस्थान के सभी इलाकों में नहीं है – यह मात्र रेगिस्तानी जिलों की ही समस्या है। पानी के अभाव की एक और घटना का वर्णन शिवकेश ने किया है, "घर में महिलाएं बर्तन मिट्टी से रगड़कर कपड़े से पोंछकर रख देती हैं। धोनेभर का पर्याप्त पानी तो है नहीं।"[4]

पत्रिका की विशिष्टता का आधार मात्र आओ गांव चलें ही नहीं है। हर क्षेत्र की खबरों, गोष्ठियों की समीक्षा रपट पत्रिका में छपती रहती है। जीवन के जितने रंग हैं उन सब पर पत्रिका की पैनी नज़र रहती है। इसी प्रकार 'राजस्थान साहित्य अकादमी' प्रतिवर्ष आख्यान माला का आयोजन करती है उसके संबंध में भी यहां एक रपट छपी है। यह गोष्ठी संस्कृति के महत्व पर थी। राजस्थान की संस्कृति के अलावा भी हिन्दी साहित्य और भाषा पर अनेक व्याख्यान यहां होते रहे हैं। 2 अप्रैल के इस अंक में वक्ता डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी हैं उन्होंने कबीर व अन्य भक्त कवियों की कविताओं पर यहां विचार किया है। त्रिपाठी जी ने कहा है कि, "कबीर की कविता में मिथकीय सचाई है। कबीर के राम मानवीय भावना से जुड़े थे। यह साधना पार–लौकिक है। प्रेम निजता से उपजता है। कबीर की सामाजिक चेतना भी निजता के रूप में है। जहां–जहां भी पीड़ा है, वहां–वहां कबीर है। उनकी साधना पर दुःख साधक है।"[5] डॉ. त्रिपाठी ने भक्त कवियों के महत्त्व को स्वीकारते हुए उनकी प्रासंगिकता पर चर्चा की और भक्तिकाल के काव्य और संतों के योगदान को सराहा है। डॉ. त्रिपाठी ने कहा, "हमारे देश की संस्कृति पर, सांस्कृतिक परम्परा और धरोहर पर जो प्रभाव बहु–राष्ट्रीय कम्पनियों का पड़ रहा है और जो अप–संस्कृति पनप रही है, यदि उससे अपनी संस्कृति और अपनी अस्मिता को बचाना है तो हमें संत कवियों के पास जाना होगा।"[6] संत कवियों का जीवन दर्शन भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है।

---

1. राजस्थान पत्रिका, 9 मई, 1994, पृ. 7
2. वही, पृ. 7
3. वही, पृ. 7
4. वही, पृ. 7
5. राजस्थान पत्रिका, 2 अप्रैल, 1995, पृ. 9
6. वही, पृ. 9

पत्रिका ने अपने लेखों और समाचारों के माध्यम से दहेज प्रथा के खिलाफ भी जनमत बनाने का कार्य किया है और इसे एक बुराई के रूप में चित्रित किया है। गंगापुरा गांव सीकर जिले का एक गांव है। यहां ललित शर्मा पत्रिका संवाददाता पहुंचे हैं और गांव का हाल बयान किया है। इन्होंने बताया है कि अब किस तरह से दहेज का प्रचलन एक सामान्य बात हो गई है जिसके कारण बहुत से लोग अपनी लड़कियों की पढ़ाई भी नहीं करा पाते। उन्हें यह डर सताता रहता है कि पढ़ाई में जितना खर्च करेंगे उससे अधिक फिर दहेज में देना पड़ेगा। अतः जितना जल्द हो सके शादी कर दी जाये। इसके चलते बाल–विवाह भी अधिक होते हैं। ललित शर्मा ने लिखा है कि, "हाल के पांच–सात वर्षों में शादी–विवाह में दिये जाने वाले दहेज का लेन–देन तेजी से बढ़ा है।"[1] पहले कहीं 20–30 हजार रुपये में काम चल जाता था अब वही कार्य लाखों में हो गया है।

पत्रिका के आलेखों में विविधता है और जैसा की हमने पहले भी कहा कि जीवन के सभी रंग हैं। 'हिन्दी पत्रकारिता : संवाद की चुनौतियां' विषय पर पं. विद्यानिवास मिश्र का एक महत्वपूर्ण आलेख के माध्यम से संवाद पर विचार किया गया और पाठकों को नयी–नयी जानकारी उपलब्ध कराई गई। 16 जनवरी, 1994 के रविवारीय परिशिष्ट में यह लेख छपा है। हिन्दी पत्रकारिता की समस्याओं की तरफ मिश्र जी ने हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि, "आज पश्चिम में क्या हो रहा है ? पश्चिम में छोटे–छोटे गांवों में छोटे–छोटे कस्बों में अखबार निकल रहे हैं। क्यों निकल रहे हैं, केवल शादी, जमीन की सूचना देने के लिए नहीं, केवल उस जगह के रहने वाले किसी लड़के की प्रतिभा की सूचना देने के लिए नहीं, बल्कि बातचीत का एक सिलसिला चलाने के लिए क्योकि बातचीत कम हो गई।"[2] मिश्र जी ने संवाद धर्मिता का सवाल उठाया है। अखबार का यह दायित्व बनता है कि वह जनता की सोच को सामने लाये। हर व्यक्ति अलग ढंग से सोचने वाला होता है और महत्वपूर्ण खोज और सोच विचारों से ही शुरू होती है। अतः एक लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के लिए सभी लोगों की भागीदारी और उनके विचारों का सम्मान आवश्यक हो जाता है। ज्ञान का डरावना बोझ हमारे देश की संस्कृति का हिस्सा नहीं रहा है। हमारे यहां प्रबुद्ध और सामान्य व्यक्ति का अन्तर भी अधिक नहीं रहा है। इसी बात को ध्यान में रखकर मिश्र जी कहते हैं कि – "प्रबुद्धता का जो यह घेरा है, वह हमारे देश का

---

1. राजस्थान पत्रिका, 6 अप्रैल, 1995, पृ. 7
2. राजस्थान पत्रिका, 16 जनवरी, 1994 (पत्रिका हेडक्वाटर, केसरगढ़, जयपुर), पृ. 1

नहीं है। हमारे देश में प्रबुद्ध और गैर–प्रबुद्ध के बीच में कोई खाई नहीं रही है। मामूली से मामूली आदमी प्रबुद्ध से प्रबुद्ध व्यक्ति को चुनौती दे सकता था। बनारस का एक मामूली चाण्डाल शंकराचार्य को चुनौती दे सकता था। चुनौती देने की उसमें क्षमता थी, उसमें समझदारी थी और वह समझदारी, ज्ञान की धारा को मोड़ सकती थी, शोध की धारा को मोड़ सकती थी और उस पर ध्यान दिया जाता था।"[1] मिश्र जी ने आजकल के तथाकथित विद्वानों पर यह बात कही है जो अपने आपको परम ज्ञानी समझते हैं और दूसरों को सिर्फ सामान्य या मूर्ख। मिश्र जी का मानना है कि हमारी परम्परा संवाद की है और यहां लोगों में गहरी खाई नहीं रही। अतः विद्वानों को अपनी विद्वता का उपयोग सामान्य जन के लिए करना चाहिए।

ज्ञान के लिए ज्ञान प्राप्त करना उद्देश्य रहित और फल रहित है जो किसी का भला नहीं कर सकता। अतः व्यक्ति को अपने ज्ञान को बांटकर देश और समाज के भले में लगाना चाहिए।

राजस्थान पत्रिका ने संवैधानिक संस्थाओं की मर्यादाओं का सम्मान रखने की हमेशा बात की है। लोकायुक्त के राजस्थान में गठन होने पर भी पत्रिका ने इसका स्वागत किया था। लोकपाल विधेयक के संसद में पास न होने पर भी राजस्थान पत्रिका ने नाराजगी व्यक्त की थी। यह भी संयोग की ही बात है कि सर्वप्रथम लोकपाल की स्थापना की मांग राजस्थान की धरती से उठी। "1963 में राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (हरिशचन्द्र माथुर समिति) ने यह सुझाव दिया था कि भारत में स्केण्डेनेवियन देशों की भांति ओम्बुड्समैन जैसी संस्था की स्थापना आवश्यक है। इसी प्रकार तत्कालीन संसद–सदस्य डॉ. एम.एल. सिंधवी ने भारतीय संसद में पुरजोर यह आवाज उठाई कि भारत में जन अभियोग निराकरण करने के लिए 'ओम्बुड्समैन' जैसी संस्था की स्थापना की जानी चाहिए।"[2]

ओम्बुड्समैन नामक संस्था की स्थापना सर्वप्रथम सन् 1809 में स्वीडन में हुई थी। इसके बाद शनैः–शनैः नार्वे, फिनलैण्ड, ब्रिटेन आदि अनेक देशों में संस्था की उपयोगिता को देखते हुए इसकी स्थापना की गई। ओम्बुड्समैन से तात्पर्य एक ऐसी संस्था से है, जो जनता की प्रतिनिधि संस्था के रूप में कार्य करे। जो जनता की सच्ची दोस्त, हमदम और साथी जैसा व्यवहार करे। यह राजनीतिज्ञों तथा प्रशासकों के विरुद्ध जनता की

---

1. राजस्थान पत्रिका, 16 जनवरी, 1994, पृ. 1
2. राजस्थान पत्रिका, 25 जून, 1995, पृ. 3

शिकायतों को उसके एक शुभचिन्तक की भांति स्वीकार कर उनके सम्यक् निवारण हेतु सतत् प्रयास करती है।"[1]

राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित प्रशासनिक सुधार आयोग ने सन् 1967 में अपने प्रतिवेदन 'जन अभियोग निराकरण पर प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन' में आयोग ने यह सिफारिश की थी कि भारत में ओम्बुड्समैन जैसी संस्था की स्थापना अति आवश्यक है। इसमें प्रशासनिक अधिकारियों व मंत्रियों के खिलाफ एक "सादे पोस्ट कार्ड के माध्यम से शिकायत की जा सकती है और उसकी गोपनीय तरीके से जाँच कर अपना प्रतिवेदन सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रावधान होगा और सरकार तद्नुरूप कार्यवाही कर सदन को प्रतिवेदन तथा इस पर की गई कार्यवाही से अवगत कराएगी।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्रिका का उद्देश्य सामाजिक जागरुकता लाना अपने पाठक को सरल और सहज भाषा में खबरें और ज्ञानवर्द्धक जानकारी उपलब्ध कराना है। इसके अलावा पत्रिका राजस्थानी भाषा और संस्कृति से संवर्द्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। परिवार, समाज, देश, कॉलेज, विद्यालय, किसान–मजदूर, व्यापारी वर्ग पत्रिका सभी के हितों के लिए कार्य करने वाला मंच है।

---

1. राजस्थान पत्रिका, 25 जून, 1995, पृ. 3
2. वही, पृ. 3

3.4 पत्रिका और व्यावसायिक हित

राजस्थानी मूल के लोग व्यापार में काफी आगे रहे हैं। यहां के मारवाड़ियों की देश में ही नहीं बल्कि विदेशों तक धाक है। उनके व्यावसायिक कौशल का सभी लोहा मानते हैं। राजस्थान पत्रिका व्यावसायियों व किसानों के हितों का ध्यान रखती है। पत्रिका में लगातार राजस्थान की मण्डियों के भाव विस्तार से बताये जाते हैं। थोक और खुदरा दोनों भावों पर जोर रहता है। सर्राफा बाजार में सोना–चांदी, जेवर सभी के भावों की चर्चा रहती है। शेयरों के समाचार हैं। 'ए' श्रेणी के शेयर 'बी' श्रेणी के शेयर, वर्गीकृत शेयर व अन्य शेयर करके विस्तार से एक–एक कम्पनी के नाम के साथ शेयरों के भाव बताये गये हैं। हालांकि आजकल राजस्थान पत्रिका में शेयरों के भाव इस तरह से नहीं दिये जाते जिस तरह के 1991 से 95 के वर्षों में दिये गये हैं। इसका कारण इन्टरनेट सेवाओं का व्यापक विस्तार व बिजनस अखबारों की बाजार में अधिक उपलब्धता है।

सन् 1992 का शेयर घोटाला काफी चर्चित रहा था। पत्रिका ने अपने सम्पादकीय और अनेक लेखों के माध्यम से सरकार को आगाह किया था कि वह इस तरह की पुनरावृत्ति न होने दे जो अर्थव्यवस्था और आम निवेशक के हक में नहीं है। पत्रिका ने लिखा था कि, "सरकार को पहले तो इस घोटाले की नैतिक जिम्मेदारी निर्धारित करनी होगी और उसके बाद कानून कायदों में आवश्यक संशोधन करने होंगे, जिससे ऐसे घोटालों की पुनरावृत्ति न हो।"[1]

आजादी के बाद सार्वजनिक संस्थाओं, जिनमें बैंक शामिल हैं, यह सबसे बड़ा घोटाला था और सबसे अधिक चिन्ता की बात यह है कि इस घोटाले में बैंकों के वरिष्ठतम अधिकारी भी शामिल थे, जो कुछ तथ्य अभी तक सामने आए हैं उनसे बैंकों की विश्वसनीयता को कितना आघात लगेगा, इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है। राजस्थान पत्रिका ने इस घोटाले पर सरकार को कई बार सचेत किया है और लोगों में विश्वास की बहाली की बात कही है।

जाति–पांति का बंधन भी व्यवसाय को प्रभावित करता है। जयसिंहपुरा गांव के बैरवाओं (हरिजनों) के दूध न बिकने की घटना से यह स्पष्ट हो जाता है। अब कोई दलित इस व्यवसाय में आना चाहे तो राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्र में तो यह संभव नहीं है। इन लोगों

---

1. राजस्थान पत्रिका, 5 जून, 1992, पृ. 6

का आपसी लेनदेन भी खुद के दलित परिवारों के साथ ही होता है। राजस्थान के गांवों की यह दशा कमो–वेश अभी भी बनी हुई है।

खनन उद्योग राजस्थान का एक प्रसिद्ध उद्योग है। विभिन्न रंग के संगमरमर का तो राजस्थान एक मात्र स्थान है। यह पत्थर बहुत कीमती भी है जिससे राजस्व की भारी मात्रा में प्राप्ति होती है। ताजमहल का सफेद संगमरमर राजस्थान के मकराना (नागौर) से ही लाया गया था। हरा, पीला, गुलाबी आदि अनेक रंगों का संगमरमर यहां की खानों में निकलता है। अवैध खनन की शिकायतें भी यहां से मिलती हैं, श्रमिकों की भी समस्याएं हैं। पत्रिका ने अपने स्तंभ प्रसंगवश में "पत्थर खनन पर संकट"[1] नाम से एक कॉलम लिखा है जिसमें बूंदी जिले के बरड़ क्षेत्र में पत्थर व्यवसाय के सामने संकट का वर्णन है। "बरड़ क्षेत्र में करीब दो हजार पत्थर की खाने हैं। ये खदानें वर्षों से विस्फोटक पदार्थों के सहारे चल रही हैं। इस व्यवसाय का धीरे–धीरे इतना फैलाव हुआ है कि आज इससे हजारों की संख्या में श्रमिक सीधे तौर पर रोजगार से जुड़े हैं।"[2] यहां की समस्याएं कई तरह की हैं खनन का अवैध दोहन, मजदूरों के रोजगार का प्रश्न, विस्फोटक सामग्री का अभाव आदि। पत्रिका ने इन समस्याओं को बार–बार उठाकर सरकार का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है।

किसानों को नकली खाद व कीटनाशक का अभाव भी एक सामान्य समस्या रही है। राजस्थान रवि की फसल की बुआई के दौरान किसानों को यूरिया और डीएपी खाद का संकट देखने को मिलता है। इससे किसान की फसल की बुआई ठीक समय पर नहीं हो पाती और उसे आर्थिक रूप से नुकसान उठाना पड़ता है। पत्रिका ने अपने खास स्तंभ प्रसंगवश में इस समस्या को उठाया – "श्रीगंगानगर और बीकानेर के सिंचित विकास क्षेत्र में कीटनाशक तथा नकली उर्वरकों की समस्या से जहां क्षेत्र के किसान पिछले काफी समय से परेशान हैं वहीं राज्य सरकार को भी लाखों रुपये का आर्थिक नुकसान उठाना पड़ रहा है।"[3] इसी प्रकार कुछ दिनों पूर्व खाजूवाला में डी.ए.पी. की नकली खाद पकड़ी गई थी, लेकिन कृषि विभाग ने कोई कार्यवाही नहीं की। इसी तरह सीमा क्षेत्र की मंडियों में इन दिनों नकली खाद और कीटनाशक धड़ल्ले से बिक रहे हैं लेकिन अवैध धंधा करने वाले विक्रेताओं के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है। पत्रिका ने किसानों के विषय में

---

1. राजस्थान पत्रिका, 22 दिसम्बर, 1993, पृ. 8
2. वही, पृ. 8
3. राजस्थान पत्रिका, 2 अगस्त, 1993, पृ. 8

अनेक समस्याएं सरकार के सामने रखी हैं और सरकार को कार्य करने के लिए मजबूर किया है जैसे – 15 जनवरी, 1993 के अंक में 'किसानों की समस्याएं' नामक लेख। पत्रिका में छपा है। इसमें बताया गया है कि, सरकार की यह आदत–सी बन गई है कि जब तक कोई वर्ग विशेष अपनी समस्याओं के लिए आन्दोलन का मार्ग नहीं अपनाता तब तक वह उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देती।"[1] गंगानगर के किसान नरमा–कपास की उचित कीमत दिलाने की मांग सरकार से कर रहे हैं, यह जिला नरमा–कपास का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। इसी प्रकार 8 अक्टूबर 1993 के अंक में 'टिड्डियों की चपेट में राजस्थान' खबर उठाने के बाद सरकार को जवाब देना पड़ा है। पत्रिका ने लिखा है, "कृषि विभाग के संयुक्त निदेशक पी.एस. भल्ला ने पत्रिका को बताया कि गंगानगर सहित राज्य के किसी भी हिस्से में अब टिड्डियों से किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचने देंगे।"[2]

सारांशतः कह सकते हैं कि क्षेत्रीय हिन्दी पत्रकारिता का प्रसार–प्रचार तेजी से हो रहा है, विज्ञापन बाजार और विज्ञापन कम्पनियों का प्रसार हो रहा है। अखबार को खबरों और विज्ञापन में सन्तुलन लाना होगा ताकि अखबार अपने मूल उद्देश्य से हटते हुए नजर नहीं आएं। राजस्थान पत्रिका अपने संस्थापक सम्पादक कुलिश जी से प्रेरणा लेती है और उन्हीं के दिखाए रास्ते पर आज तक चल रही है। कुलिश जी भारतीय संस्कृति राष्ट्र की अस्मिता के बोध को महत्त्व देते थे। पत्रिका आजतक इसी मार्ग का अनुसरण कर रही है। पत्रिका अपने सामाजिक सरोकारों के कारण जानी जाती है और अन्य अखबारों से इसका योगदान इस विषय में कहीं अधिक है। राजस्थान पत्रिका व्यापारियों, किसानों–मजदूरों के हित की लड़ाई में कभी पीछे नहीं रही। सरकार के अनुचित कानूनों का विरोध करना हो या सरकार का ध्यान आकर्षित करना हो पत्रिका ने हमेशा सजगता का परिचय दिया है।

---

1. राजस्थान पत्रिका, 15 जनवरी, 1993, पृ. 8
2. राजस्थान पत्रिका, 0 अक्टूबर, 1993, पृ. 1

अध्याय : चार

राजस्थान पत्रिका और क्षेत्रीय सरोकार

4.1 पत्रिका और राजनीतिक सरोकार

4.2 पत्रिका और सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार
(सती प्रथा, बाल–विवाह)

4.3 पत्रिका और क्षेत्रीय आंदोलन
(सूचना अधिकार, मजदूर किसान, दलित और स्त्री आंदोलन, विद्यार्थी हित, स्थानीय समस्याएँ – पानी, बिजली)

4.1 पत्रिका और राजनीतिक सरोकार

लोकतांत्रिक व्यवस्था के अपने कुछ मूल्य होते हैं जिसको वह स्थापित करना चाहती है। जिसमें सर्वव्यस्क मताधिकार, चुनाव लड़ने की स्वतंत्रता, राजनीतिक दल बनाने की स्वतन्त्रता, लोकतांत्रिक संस्थाओं के निर्माण में सहयोग आदि प्रमुख हैं। इसमें प्रेस की भूमिका पर भी बात होती है जिसे राज्य का 'चतुर्थ स्तंभ' भी कहा जाता है। प्रेस को समाज में होने वाली सभी प्रकार की गतिविधियों पर नजर रखनी पड़ी है, साथ ही सरकार की स्वस्थ आलोचना का अधिकार भी उसके पास होता है। 'राजस्थान पत्रिका' इस विषय में अपनी भूमिका राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों पर लेख, सम्पादकीय लिखकर निभाती है। 'राजस्थान पत्रिका' का एक पहलू राजस्थान प्रदेश से जुड़ी राजनीतिक समस्याओं पर भी केन्द्रित होता है।

हम अपनी आजादी के छः दशक से अधिक पूरा कर चुके हैं। अब हमें यह जाँचने–पड़तालने की जरूर है कि 'राज्य के चतुर्थ स्तंभ' की भूमिका क्या रही है ? लोकतंत्र की सफलता के लिए यह जरूरी है। आज जिस दौर में लोकतांत्रिक व्यवस्था और हिन्दी प्रेस है, वहां दोनों के लिए नए खतरे दिखाई दे रहे हैं। पिछले छः दशकों में हिन्दी पत्रकारिता का विस्तार जरूर हुआ है। पत्र–पत्रिकाओं और पाठकों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। प्रिंटिंग मशीनरी और संचार तंत्र का क्रांतिकारी आधुनिकीकरण हुआ है। क्षेत्रीय पत्रकारिता का एक स्वतंत्र अस्तित्व नजर आया है। इन सबके बावजूद भी हिन्दी पत्रकारिता को आज स्तरीय श्रेष्ठता नहीं प्राप्त है; क्योंकि हिन्दी पत्रकारिता 'मिशनरी रोल' से हट कर व्यावसायिकता के दौर में पहुंच चुकी है।

इसमें कोई शक नहीं है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत के आरंभिक वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता उच्च मूल्यों से प्रेरित रही है। तब इसके मालिकों और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच अलगाव पैदा नहीं हुआ था। "संपादक संस्था का महत्त्व बना हुआ था। संपादकीय विभाग की अपनी गरिमा बची हुई थी। इस क्रम में टाइम्स समूह, एक्सप्रेस समूह, हिंदुस्तान टाइम्स समूह जैसे प्रेस समूहों से प्रकाशित हिंदी पत्र–पत्रिकाओं को गिनाया जा सकता है।"[1] यद्यपि इन समाचार पत्रों में अंग्रेजी पत्रकारिता का दबदबा था, तो भी हिन्दी प्रकाशनों और संपादकों का स्थान कम प्रभावशाली नहीं था।

---

1. रामशरण जोशी – मीडिया–विमर्श, पृ. 85

प्रजातांत्रिक देशों में राजनीतिज्ञों और पत्रकारों के बीच गहरे रिश्ते रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले और बाद के आरंभिक वर्षों में कई नेताओं ने आजादी की अलख जगाने के लिए अखबार निकाले। इनमें बालगंगाधर तिलक का 'केसरी' और मराठा, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का बंगाली, नेहरूजी का नेशनल हैराल्ड और महात्मा गांधी का हरिजन देश भक्ति या राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत अखबार थे। आजादी के बाद बड़ा उद्देश्य पूरा हुआ मान लिया गया। जबकि ऐसा नहीं था क्योंकि आजादी के बाद राष्ट्र निर्माण हेतु अनेक बड़ी–बड़ी चुनौतियां भी जिनको पूरा करने में पत्रकारिता मददगार हो सकती थी, लेकिन अखबारों की व्यावसायिकता बढ़ने लगी और उसी नजरिये से रिश्ते बनते–बिगड़ते रहे। वरिष्ठ पत्रकार आलोक मेहता ने लिखा है, "कांग्रेस के बाद सत्ता में आने वाली प्रमुख पार्टी भारतीय जनता पार्टी के नेताओं ने भी प्रतिबद्ध पत्रकारिता को महत्त्वपूर्ण माना। राष्ट्रवाद के नाम पर अपने पसंदीदा पत्रकारों और अखबारों को सर्वाधिक प्रश्रय दिया गया"[1]

राजनीतिज्ञों में सबसे बड़ी दुविधा यह रही है कि वह आलोचना को सुधार का माध्यम बनाने की बजाय उसे षड्यंत्र के रूप में देखा जाता रहा है। चाहे कांग्रेस राज में सी.आई.ए. का हौवा खड़ा कर दिया जाए और गैर–कांग्रेसी राज में धर्मनिरपेक्षता की बात करने वालों को अपराधी की तरह चित्रित किया जाए। इन तमाम वाद–विवादों के बावजूद मीडिया को अपनी भूमिका का निर्वाह तटस्थ ढंग से करना होगा तभी मीडिया लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ की भूमिका ठीक ढंग से निभा पायेगा।

आज मीडिया को समय की मांग के अनुसार लोकतांत्रिक पुनर्निर्माण के लिए व्यावसायिक हित और लोकहित में संतुलन कायम करना होगा। मीडिया को तटस्थ रूप से सामाजिक–राजनीतिक और आर्थिक सहित अन्य सभी मानवीय गतिविधियों का स्वस्थ प्रतिबिंबन करना होगा।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। किसी भी देश में जहां लोकतंत्र है वहां प्रेस की स्वतंत्रता एक अनिवार्य लक्षण है। भारत में इस लिहाज से एक–आध घटनाओं को छोड़कर प्रेस का गला कभी नहीं घोटा गया। 'राजस्थान पत्रिका' प्रदेश, देश व विदेश में घटित होने वाली राजनीतिक घटनाओं पर सम्पादकीय व अपने अन्य अनेक प्रकार के स्तंभों व लेखों के माध्यम से जनता को सूचना देने का कार्य करती रही है।

---

1. आलोक मेहता – पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा, पृ. 23

पत्रिका के संस्थापक संपादक कुलिश जी राजनीति के भविष्य दृष्टा थे, अनेक बार विधानसभा चुनाओं में उन्होंने राजस्थान विधान सभा की तस्वीर पहले ही पत्रिका में छाप दी थी। कुलिश जी जयपुर में बैठकर पत्रकारिता नहीं करते थे वे पूरे राजस्थान का दौरा भी करते थे और जनता के मन को भांप कर ही कुछ लिखते थे। ऐसे में उनका अनुमान अधिक सटीक होना स्वाभाविक था। '1962 के राज्य विधानसभा चुनाव का कुलिश जी ने आकलन प्रस्तुत किया था कि कांग्रेस और विभाजित विपक्ष के बावजूद पक्ष–विपक्ष की समान स्थिति रहेगी। वैसा ही नतीजा आया।'[1] 1967 के चुनाव से पूर्व कुलिश जी ने सम्पूर्ण राजस्थान का दौरा मोटर कार से किया और वे जहां–जहां गये लोगों ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। व्यापक भ्रमण के बाद कुलिश जी ने जनता का मूड भांप कर निष्कर्ष निकाला कि, "कांग्रेस जीतेगी तो कैसे ?"[2] क्योंकि जनता ने कांग्रेस पार्टी की नीतियों को पसन्द नहीं किया था। चुनावी नतीजों के बाद बात स्पष्ट हो गयी की कुलिश जी का आकलन सही था।

यह सत्य है कि केवल 1984 के लोकसभा चुनाव के अतिरिक्त जितने भी चुनाव हुए पत्रिका की भविष्यवाणी सही निकली। "1984 के गलत आकलन के लिए कुलिश जी ने प्रथम पृष्ठ पर खेद व्यक्त किया। संभवतः यह पहली और अंतिम घटना होगी जब किसी सम्पादक ने अपना अनुमान सही नहीं निकलने पर पाठकों से क्षमा याचना की हो।"[3]

1971 के लोकसभा के मध्यावधि चुनाव में और 1972 के राज्य विधानसभा चुनाव में पत्रिका ने कांग्रेस का समर्थन किया। आपातकाल के बाद लोकसभा के 1977 के चुनाव के समय कुलिश जी ने आकलन प्रस्तुत किया था कि "आखिर कांग्रेस जीतेगी तो कहां से।"[4] परिणाम भी वैसा ही आया। कांग्रेस को राज्य की 25 लोकसभा सीटों में से केवल एक सीट मिली। इससे पत्रिका की लोकप्रियता बढ़ती गई और पाठक संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होती रही।

आजकल हमारे देश में चुनाव–पूर्व अनुमान लगाने का कार्य एक धंधे के रूप में विकसित हो रहा है जो राजनीतिक दृष्टि से कतई गैर–जिम्मेदाराना कार्य है और अनुमान

---

1. विजय भण्डारी – राजस्थान पत्रिका 'बढ़ते कदम', पृ. 17
2. वही, पृ. 18
3. वही, पृ. 17
4. वही, पृ. 17

लगाने वाले लोग पार्टीबद्ध कार्यकर्त्ता के तौर पर अपनी–अपनी निष्ठा वाली पार्टी के जीत के दावे करते हैं। ऐसे लोगों को कुलिश जी से प्रेरणा लेनी चाहिए और अपने कार्य के प्रति जिम्मेदार भी होना चाहिए।

हमारे अध्ययन का विषय चूंकि 90 के दशक के पहले पाँच वर्ष हैं अतः इस दौर की बड़ी राजनीतिक घटनाओं के आधार पर हम यह देखेंगे की राजस्थान पत्रिका ने इनका किस प्रकार कवरेज किया। 31 जनवरी 1991 के राजस्थान पत्रिका के सम्पादकीय का शीर्षक है 'राजनीतिक संकट !'[1] खाड़ी युद्ध के दौरान इस समय चन्द्रशेखर की सरकार कांग्रेस के समर्थन से चल रही है। इस दौर में अमरीकी वायु सेना के दो हवाई जहाजों में बम्बई में ईंधन भरने की केन्द्र सरकार की इजाजत को लेकर भारत में राजनीतिक संकट पैदा होने की आशंकाएं बन गई थी। पत्रिका ने अपने सम्पादकीय के माध्यम से न केवल इस घटना पर जनता का मत मांगा बल्कि राजीव गांधी के असहयोगपूर्ण रवैया की भी आलोचना की। "राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री को लिखे पत्रों को प्रकाशित करके यह साफ कर दिया है कि वे जनता दल (स) की सरकार के साथ टकराव लेना चाहते हैं। कांग्रेस (इ) को अचानक यह एहसास हुआ कि केन्द्र में अल्पमत की सरकार है।"[2] "जहां तक खाड़ी संकट में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से संबंधित सवालों की भूमिका का प्रश्न है शीत युद्ध की समाप्ति के बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन स्वतः ही शिथिल पड़ गया था और उसकी जिम्मेदारी चन्द्रशेखर की नहीं, स्वयं राजीव गांधी की थी जो उस समय इस देश के प्रधानमंत्री थे।"[3] पत्रिका ने पंजाब समस्या पर भी राजीव गांधी के रवैये की आलोचना की है। पत्रिका ने लिखा कि, "पंजाब की समस्या न तो विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पैदा की थी और न चन्द्रशेखर ने। यह तो कांग्रेस (इ) सरकार की ही देन है और उसके लिए राजीव गांधी भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं होगा कि राजीव गांधी और उनकी पार्टी देश के वर्तमान हालात का राजनीतिक लाभ उठाना चाहती है।"[4]

पत्रिका ने अपने सम्पादकीय के माध्यम से साफ कर दिया कि पंजाब की समस्या कांग्रेस सरकार के कार्यकाल की देन है। अतः अब कांग्रेस पार्टी को चाहिए कि वह इस

---

1. विजय भण्डारी – राजस्थान पत्रिका 'बढ़ते कदम', पृ. 17
2. राजस्थान पत्रिका – 31 जनवरी, 1991, पृ. 6
3. वही, पृ. 6
4. वही, पृ. 6

समस्या के समाधान में सहयोग करे चाहे वह सत्ता में हो या विपक्ष में। पत्रिका ने लिखा भी है – "पंजाब का मामला हो, खाड़ी संकट में भारत की भूमिका का मामला हो या अमरीकी सैनिक विमानों में ईंधन भरने की सुविधा का मामला हो, कांग्रेस (इ) का यह दायित्व है कि सरकार के साथ सम्पर्क बनाए रखे और विचारों के आदान–प्रदान से समस्याओं का समाधान निकालने का प्रयास करे।"[1]

जून 1991 में दसवीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए। इस चुनाव के दौरान पत्रिका ने "मतदाता उदासन क्यों ?"[2] नाम से अपने सम्पादकीय में उदासीनता के कारण बताये और चुनाव सम्पन्न होने पर फिर से सम्पादकीय लिखा जिसमें पूर्व अनुमानित त्रिशंकु सदन बना था। मतदाता की उदासीनता के कारणों पर चर्चा के दौरान पत्रिका ने लिखा कि – "मतदान के प्रतिशत में गिरावट आने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि लोग हिंसा के कारण भयभीत हैं या फिर वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में पैदा हो रही अस्थिरता की वजह से लोगों में चुनावों के प्रति उत्साह कम होता जा रहा है।"[3]

दसवीं लोकसभा के चुनाव कई चरणों में सम्पन्न हुए थे। चुनाव सम्पन्न होने पर पत्रिका ने इसे "ऐतिहासिक चुनाव"[4] कहा। पत्रिका ने लिखा कि "जनता ने फिर से एक बार राजनीतिक पार्टियों के कामकाज के बारे में अपना असन्तोष प्रकट किया है। आजादी के बाद आठों लोकसभाओं में कभी ऐसी स्थिति पैदा नहीं हुई, जैसी पिछले दो चुनावों में देखी गई है। मतदान के रूख से भी यह बात स्पष्ट हो गई कि जनता राजनीतिक पार्टियों से नाखुश है।"[5]

पत्रिका ने मध्यावधि चुनाव को इसलिए भी महत्वपूर्ण माना क्योंकि इसमें जनता ने सत्ता के लिए दल–बदल का सहारा लेने वालों को जबरदस्त सबक सिखाया है। पत्रिका ने नई सरकार के लिए नेतृत्व का संकट भी बताया। इस प्रकार के विश्लेषण से स्पष्ट है कि पत्रिका राजनैतिक घटनाक्रम पर अपनी पैनी नजर रखती है।

---

1. राजस्थान पत्रिका – 31 जनवरी, 1991, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका – 31 जनवरी, 1991, पृ. 6
3. वही, पृ. 6
4. राजस्थान पत्रिका – 14 जून, 1991, पृ. 6
5. वही, पृ. 6

दसवीं लोकसभा के बाद नरसिम्हा राव ने देश की बागडोर संभाली और वित्त मंत्रालय डॉ. मनमोहन सिंह ने। राव ने घोषणा की कि देश के समक्ष भारी कठिनाइयां हैं तो डॉ. सिंह ने भी अर्थव्यवस्था की सच्ची तस्वीर लोगों के सामने रखी। यही वह दौर था जब देश ने नई आर्थिक नीतियां लागू की और आगे चलकर इनका दूरगामी प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा। राव जब प्रधानमंत्री बने तब "देश में महंगाई आसमान छू रही थी, मुद्रास्फीति पर कोई नियंत्रण नहीं था, विदेशी भुगतान संतुलन पूरी तरह गड़बड़ा गया था, कानून और व्यवस्था की स्थिति चिन्ताजनक थी।"[1]

वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने अपने वक्तव्य में आर्थिक संकट की चर्चा की। डॉ. सिंह ने कहा कि, "यदि हम अब भी नहीं चेतेंगे तो हम देश की आर्थिक स्वतंत्रता को गिरवी रख देंगे। हमें आने वाली पीढ़ियों के लिए कुछ कठोर निर्णय करने होंगे।"[2]

डॉ. सिंह ने चुनावों में कांग्रेस के घोषणा पत्र को भी सही नहीं माना जिसमें अर्थव्यवस्था की सच्ची तस्वीर पेश नहीं की गई थी। डॉ. सिंह ने कहा कि हमें, "देश की आर्थिक रचना को अनावश्यक सिद्धांत के घेरे से बाहर निकालना होगा और ऐसी नीतियां बनानी होंगी जिससे देश की अर्थव्यवस्था को पुनः लीक पर लाया जा सके।"[3] आज हम इसका निष्पक्ष विश्लेषण कर सकते हैं कि भारत यदि एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा है तो इसी दौर के खुलेपन और उदारीकरण की नीतियों की वजह से। भारतीय मीडिया ने उदारीकरण का विरोध किया था और इसे देश को गुलामी की तरफ धकेलने वाला कदम भी बताया था। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से ऋण प्राप्त करने के प्रश्न पर 'राजस्थान पत्रिका' ने भी विरोध किया था। 'आर्थिक दासता का खतरा'[4] नामक लेख में श्रवण कुमार ने इस कदम का विरोध किया है। श्रवण कुमार ने लिखा है, "कर्ज लेकर कर्ज चुकाने की स्थिति यहां तक विकराल रूप धारण कर चुकी है कि घाटे की अर्थ–व्यवस्था से उबरपाना फिलहाल बहुत दुष्कर कार्य है। कर्जदाता भी कर्ज देते वक्त अपनी शर्तें लगाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष कर्ज देने के नाम पर जो शर्तें लगा रहा है उससे लगता है कि भारत एक दूसरे ढंग की ईस्ट इंडिया कम्पनी का दास न बन जाए। यह आर्थिक दासता

---

1. राजस्थान पत्रिका – 25 जून, 1991, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका – 28 जून, 1991, पृ. 6
3. वही, पृ. 6
4. राजस्थान पत्रिका – 25 फरवरी, 1992, पृ. 6

राजनीतिक दासता से कहीं अधिक भयावह होगी। भारत की प्रबुद्ध जनता को इसका अहसास होने लगा है। गैट के महानिदेशक आर्थन डंकल ने जो दस्तावेज पेश किया है, उसमें कमोवेश उन्हीं नीतियों का उल्लेख है जो यूरोपीय समुदाय के सात धनी देश लागू करना चाहते हैं।"[1] लेकिन सारे घटनाक्रम से स्पष्ट है कि पत्रिका उदारीकरण के बदलाव को निकट से समझने की कोशिश कर रही थी।

केन्द्र की कांग्रेस सरकार के कुछ बड़े नेताओं ने दिल्ली में 9 जुलाई, 1991 को एक संगोष्ठी 'धर्मनिरपेक्षता की विफलता' पर आयोजित की जिसमें केन्द्रीय मंत्री माग्रेट अल्वा, सलमान खुर्शीद, फिल्म अभिनेता राजेश खन्ना और संसदीय मामलों के मंत्री गुलाम नबी आजाद उपस्थित थे। इन्होंने धर्म निरपेक्षता की अवधारणा को फिर से बदलने की आलोचना की व यह भी स्वीकार किया की यह नीति असफल रही है। पत्रिका ने 9 जुलाई 1991 के अपने सम्पादकीय में लिखा है कि "जब खुद कांग्रेस के मंत्री इस नीति को विफल मानते हैं तो इस पर पुनर्विचार का विरोध क्यों ?"[2] संगोष्ठी में धर्मनिरपेक्षता की नीति की विफलता क्यों हुई इसकी जाँच की मांग भी उठी। पत्रिका ने ठीक लिखा कि, "इसके लिए किसी जाँच की आवश्यकता नहीं इसके लिए तो कांग्रेस (इ) के नेताओं को खुद आत्मनिरीक्षण करना होगा।"[3] पत्रिका ने यह भी स्पष्ट किया कि अल्पसंख्यक का मुद्दा वोट बैंक से जुड़ा मुद्दा है। पत्रिका ने लिखा कि, "इस मामले में कांग्रेस (इ) ही सबसे आगे रही है। पिछले 40 वर्षों से जो नीतियां अपनाई गईं उसके कारण अल्पसंख्यक वर्ग में बहुसंख्यक वर्ग से भय की भावना उत्पन्न की गई और इसी की वजह से देश में साम्प्रदायिक तनाव और हिंसा बढ़ी है।"[4]

यह ठीक है कि देश में बहुत समय तक कांग्रेस पार्टी का शासन रहा है लेकिन साम्प्रदायिकता की समस्या एक जटिल और पेचीदा समस्या है जिसे सभी अखबार और पार्टियां जनसमुदाय भी मानता है।

पत्रिका ने अल्पसंख्यक आयोग की 12वीं रिपोर्ट जो केन्द्र सरकार को पेश की गई थी कि बात की और कहा कि, "केन्द्रीय सरकार ने अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना

---

1. राजस्थान पत्रिका – 25 फरवरी, 1992, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका – 9 जुलाई, 1991, पृ. 6
3. वही, पृ. 6
4. वही, पृ. 6

सन् 1978 में की थी तब से अब तक आयोग 12 रिपोर्ट पेश कर चुका, किन्तु इनमें से चार रिपोर्ट अब तक सार्वजनिक नहीं की जा सकी है।"[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि "कुछ विशेष वर्गों के तुष्टिकरण और उसके माध्यम से राजनीतिक लाभ उठाने की दृष्टि से ही इस आयोग की स्थापना की गई थी।"[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि पत्रिका संवैधानिक संस्थाओं और आयोगों के कार्य और गठन पर गंभीरता से विचार करती है।

पत्रिका केवल देश की ही राजनीतिक घटनाओं पर नजर नहीं रखती बल्कि दुनिया के किसी भी हिस्से में जो राजनीतिक आधार होती हैं उन पर भी अपनी प्रतिक्रिया देती है। 23 अगस्त 1991 में पत्रिका ने 'लोकतंत्र की विजय' नाम से रूस में मिखाइल गोर्बाच्योव के पुनः सत्तारूढ़ होने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "मिखाइल गोर्बाच्योव का अड़तालीस घंटे के अंतराल के बाद ही सोवियत संघ में पुनः सत्तारूढ़ होना दुनिया के लोकतांत्रिक इतिहास की एक अपूर्व घटना है और समूचे विश्व में खासतौर से लोकतांत्रिक देशों की जनता में लोकतंत्र की इस विजय पर संतोष और प्रसन्नता होना स्वाभाविक है।"[3]

90 के दशक में देश की राजनीति को बदल कर रख दिने वालों के दो बड़े मुद्दे रहे जिन्होंने देश की राजनीति इसमें एक है – राम मंदिर का मुद्दा और दूसरा – पिछड़ों के आरक्षण का मामला। राजस्थान पत्रिका ने दोनों मुद्दों पर काफी कवरेज किया। आरक्षण के मुद्दे पर पत्रिका की सोच विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार के निर्णय से अलग रही है। पत्रिका ने इसे वोट बैंक के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला हथियार माना है। यहां तक तो ठीक है लेकिन पत्रिका ने इससे आगे बढ़कर आरक्षण के सकारात्मक पहलू को बिल्कुल नकार दिया है। पत्रिका ने 27 सितम्बर 1991 के 'नई आरक्षण नीति' पर अपने सम्पादकीय में लिखा है कि, "सरकारी सेवाओं में जाति के आधार पर आरक्षण से समाज के जातीय आधार पर बंट जाने का खतरा पैदा हो गया था। ... जातिगत आधार पर आरक्षण से सामाजिक जीवन में विकृतियां आएंगी।"[4] भारतीय समाज सदियों से जाति आधारित समाज है और इस समाज में विषमता भी विद्यमान रही है जो किसी से छुपी हुई नहीं है। आरक्षण

---

1. राजस्थान पत्रिका – 16 जुलाई, 1991, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका – 16 जुलाई, 1991, पृ. 6
3. राजस्थान पत्रिका – 23 जुलाई, 1991, पृ. 6
4. राजस्थान पत्रिका – 27 सितम्बर, 1991, पृ. 6

से वंचित वर्ग को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य भी किया जा सकता है और सामाजिक न्याय की प्राप्ति भी की जा सकती है, पत्रिका इस पहलू को लगभग नकार देती है।

आरक्षण का विरोध और समर्थन अपनी सुविधा के अनुसार राजनीतिक दलों ने किया है किसी ने आजतक इस पर ईमानदारी से सोचने की कोशिश नहीं की। ईमानदारी से प्रयास किया जाता तो सवर्ण गरीब को भी इसका लाभ मिल सकता था जो सामाजिक न्याय की भावना के अनुकूल होता। पत्रिका को चाहिए था कि वह आरक्षण की मूल भावना का विरोध करने के बजाय उसको लागू करने के तरीके का विरोध करती और न केवल विरोध करती बल्कि उचित तरीका भी सुझाती।

पिछले कुछ वर्षों से यह कहा जाने लगा है कि न्याय प्रक्रिया में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं किये गए और न्याय को सस्ता और सुलभ नहीं बनाया गया तो न्यायपालिका से लोगों की आस्था डिगने लगेगी जो लोकतांत्रिक शासन पद्धति के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। एक अन्य मुद्दा जो न्यायपालिका के संबंध में आजकल काफी चर्चा में है – न्यायिक नियुक्तियों में भाई–भतीजावाद। 'प्रशासनिक सुधार आयोग–II' (मोइली कमेटी रिपोर्ट) ने भी अपनी रिपोर्ट में इसे ठीक करने का सुझाव दिया है। इसके लिए अलग से एक न्यायिक सेवा आयोग बनाने का सुझाव भी दिया गया है। राजस्थान पत्रिका ने इस मुद्दे पर 90 के दशक से ही जनमत बनाने का प्रयास किया है। 6 दिसम्बर 1991 के अपने सम्पादकीय में इस समस्या पर पत्रिका ने लिखा है, "न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनीतिक पक्षपात, न्यायिक भ्रष्टाचार ये ऐसे मुद्दे हैं जिन पर केवल न्यायपालिका या बार के सोच विचार से ही काम नहीं चलेगा। इन प्रश्नों पर खास तौर से न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में परिवर्तन लाने और उसे निष्पक्ष बनाने के लिए तो कार्यपालिका, न्यायपालिका, बार, सामाजिक संगठन व राजनीतिक दलों को ओमसी परामर्श करके कोई नई नीति और प्रक्रिया तय करनी होगी।"[1]

आज जिस विषय पर व्यापक बहस हो रही है, संगोष्ठियां हो रही हैं। अनेक समितियों के सुझाव आ रहे हैं। ऐसे विषय पर लगभग दो दशक पूर्व सिर्फ राजस्थान पत्रिका ने ही गंभीर प्रयास किये थे। इससे स्पष्ट होता है कि पत्रिका संवैधानिक संस्थाओं की गरिमा और महत्त्व के प्रति वचनबद्ध है जिसने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए इस मुद्दे पर बहस छेड़ी थी।

---

1. राजस्थान पत्रिका – 6 दिसम्बर, 1991, पृ 6

90 के दशक में अयोध्या विवाद ने राजनीति को दूर तक प्रभावित किया है। 6 दिसम्बर से पूर्व करीब एक वर्ष तक हिन्दी समाचार पत्रों में अयोध्या मुद्दे पर दोनों पक्षों के भड़काऊ बयान छपते रहे हैं। राजस्थान पत्रिका भी इस मुद्दे पर पीछे नहीं रही। पत्रिका में अटल, आडवाणी, जोशी व भैरोसिंह शेखावत, जामा मस्जिद के ईमाम के अयोध्या मसले पर अनेक भाषणों को भड़काऊ बना कर छापा गया है। न केवल भाषणों पर बल्कि अपने सम्पादकीय के माध्यम से भी पत्रिका ने सन्तुलन बनाने का प्रयास नहीं किया बल्कि ऐसा लगता है कि भारतीय जनता पार्टी के आन्दोलन का पक्ष लिया है। 14 जुलाई 1992 के अपने सम्पादकीय में पत्रिका ने लिखा है कि, "कल्याण सिंह व उनकी पार्टी यदि दावा करती है कि उसे राममन्दिर बनाने का अनादेश मिला है तो इसे गलत कैसे माना जा सकता है।"[1] धर्म के आधार पर जनता को एकजुट कर उससे जनादेश मांगना अपने आपमें धर्म निरपेक्ष देश में गैर–कानूनी है और यदि जनादेश मिल भी जाता है तो क्या धर्मनिरपेक्ष भारत के स्वरूप को बदलना उचित है ? वह भी भारत जैसे देश में जहां व्यापक निरक्षरता फैली हो। जनता को शिक्षित किया जाना चाहिए, तार्किक मुद्दों पर उनका मत मांगना चाहिए, धर्म और आस्था विषयक मुद्दों पर नहीं। अतः पत्रिका द्वारा यह कहना की मंदिर बनाने का जनादेश मिला है अनुचित है। अखबार को ऐसे एक–तरफा सम्पादकीय लेखन से बचना चाहिए।

राजस्थान पत्रिका के संस्थापक सम्पादक स्वर्गीय कुलिश जी का लेख 4 दिसम्बर, 1992 को पत्रिका के प्रथम पृष्ठ पर छपा है। कुलिश जी जैसे विद्वान पुरुष से यह अपेक्षा नहीं थी कि वे इस मुद्दे का इतना सरलीकरण कर देंगे। क्योंकि कुलिश जी ने मन्दिर–मस्जिद विवाद को राम और बाबर का झगड़ा करार दिया है; जबकि यह झगड़ा राजनीतिक है। इसमें राजीव गांधी से लेकर कल्याणसिंह व बीजेपी सभी ने अपने वोट बैंक की खातिर इसे जन्म दिया। इस बात के ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं कि बाबरी मस्जिद किसने और कब बनवाई। मस्जिद से पूर्व यहां कोई इमारत भी थी या नहीं। यदि हम मान भी लें कि यहां मंदिर रहा था तो भी इतिहास में घटित घटनाओं को आज हम इस तरह से नहीं सुलझा सकते। कुलिश जी ने लिखा है कि, "अयोध्या में अब झगड़ा, मन्दिर–मस्जिद का नहीं रह गया है, बल्कि यह मसला राम और बाबर का हो गया है। अगर यह मामला तूल पकड़ता है तो देश की जनता को राम और बाबर के बीच एक का चुनाव करना होगा।"[2]

---

1. राजस्थान पत्रिका – 14 जुलाई, 1992, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका – 4 दिसम्बर, 1991, पृ. 1

क्या यह चुनाव उचित है ? इस तरह के मुद्दे अपने निहित स्वार्थ के लिए भड़काए जाते हैं और देश के जनमानस में नफरत के बीज बोए जाते हैं और बाद में उनका मत मांगा जाता है। स्वाभाविक है कि आस्थावान और भावुक बहुसंख्यक जनता इस तरह के षड्यंत्रों का शिकार हो जाती है। यह प्रक्रिया देश के विभाजन को जन्म देती है, लोगों में अलगाव की भावना को जन्म देती है और धर्मनिरपेक्ष भारत के यह हित में नहीं है। हमारे यहां अज्ञानता, बीमारी, बेरोजगारी, दरिद्रता और अशिक्षा से लड़ने की आवश्यकता है, मंदिर–मस्जिद झगड़े में पड़ने से हम उपरोक्त विषमताओं से नहीं लड़ सकते। कुलिश जी ने अपने लेख के अन्त में 'जय श्रीराम' की भाषा में लिखा है कि, "अयोध्या अब देशवासियों की आस्था का केन्द्र बना है। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की भाषा यहां निरर्थक है। राम सब भारतवासियों के ऊपर हैं, सबके पूर्वज हैं, राष्ट्रीय आत्मा हैं जय श्रीराम ![1] स्पष्ट है कि मंदिर–मस्जिद विवाद भारतीय भोले लोगों को अधिक कट्टर बनाने का एक व्यापक अभियान था और इसका उद्देश्य था सत्ता प्राप्त करना। क्योंकि यह भी स्पष्ट हो चुका है कि बीजेपी अपने शासनकाल में सत्ता प्राप्ति के बाद इसे भूल गई। इस विवाद ने न केवल शहरों में बल्कि दूर–दराज के गांव और देहात में रहने वाली सामान्य जनता के मनों को भी बांट दिया। मस्जिद तोड़े जाने की व्यापक प्रतिक्रिया हुई। इसमें भला किसी का नहीं हुआ। मानव–मानव के बीच विभेद की दीवार अधिक गहरी हुई। विदेशों में बसे निर्दोष हिन्दू मुस्लिमों के जुल्मों के शिकार हुए। असंख्य निर्दोष लोग देश–विदेश में मारे गये या गंभीर प्रताड़ना के शिकार हुए। पाक–इंडोनेशिया समेत अनेक इस्लामिक देशों में मंदिर तोड़े गये। अकेले जयपुर शहर में 7 दिसम्बर को 23 लोग मारे गये और 125 घायल हो गये। पत्रिका ने लिखा है, "जयपुर शहर में सोमवार को आगजनी, चाकूबाजी एवं पथराव की वारदातों में 23 लोगों की मृत्यु हो गई तथा 125 अन्य घायल हो गए। इस घटना को देखते हुए चार दीवारी के भीतर और शास्त्रीनगर इलाके में अनिश्चितकाल के लिए कर्फ्यू लगा दिया गया है।"[2] इसी प्रकार पाकिस्तान में मंदिरों पर हमले हुए। पत्रिका ने लिखा है, "पाकिस्तान में 30 से अधिक मंदिरों पर हमले किए गए सरकार ने मस्जिद गिराने की घटना पर रोष व्यक्त करने के लिए कार्यालय और शिक्षण संस्थान बंद रखने के आदेश दिये हैं। लाहौर शहर में हजारों लोगों ने एक मंदिर को बुलडोजर की सहायता से ध्वस्त कर दिया,

---

1. राजस्थान पत्रिका – 4 दिसम्बर, 1991, पृ. 1
2. राजस्थान पत्रिका – 7 दिसम्बर, 1992, पृ. 1

छह अन्य पुराने मंदिरों में आग लगा दी। प्रदर्शनकारियों ने भारत को कुचल दो और हिन्दू धर्म मुर्दाबाद के नारे लगाए।"[2]

यह विचित्र बात है कि 6 दिसम्बर से पूर्व जो अखबार अयोध्या मशले पर 'राम' के साथ था, मस्जिद तोड़े जाने पर वही इसे दुर्भाग्यपूर्ण मानता है। पत्रिका ने 8 दिसम्बर, 1991 के अपने सम्पादकीय में लिखा कि, "अयोध्या में जो कुछ हुआ, वह खेदजनक और दुर्भाग्यपूर्ण है और इससे उत्पन्न हालात को समेटना मुश्किल काम हो गया है।"[3] यह अखबारों का और पत्रिका का दोहरा चरित्र है। जो दोनों नावों में सवार होना चाहते हैं।

क्षेत्रीयता, जातियता व साम्प्रदायिकता को वोट बैंक के रूप में प्रतिष्ठित करने का काम भी हमारी संवैधानिक व्यवस्था ने ही किया है। परिणामतः हमारे नेता व पार्टियां अब 'सर्वजन हिताय' या 'राष्ट्रहिताय' चिन्तन के बजाय 'क्षेत्र हिताय', 'जाति हिताय' या 'सम्प्रदाय हिताय' चिन्तन करने में ही अपना भला समझते हैं। पत्रिका ने हमारी निर्वाचन पद्धति की खामी की तरफ संकेत किया है – "हमारे राजनीतिक दलों में तीस प्रतिशत पक्के वोट के इंतजाम की रणनीति आज सबसे प्रभावी तत्व हो गया है। बहुलता प्रधान अपना भारतीय समाज जिस तरह के वोट बैंक के रूप में बंटता है, नेताओं ने सोच लिया है कि तीस प्रतिशत वोट पक्के हो जाएं तो वे सत्ता पर काबिज हो सकते हैं।"[1] फलतः विखण्डन की राजनीति का जन्म होता है। इस समस्या का समाधान कर सकते हैं, जिसमें अनिवार्य किया जा सकता है कि उसी उम्मीदवार को विजयी घोषित किया जायेगा जो कुल मतों के पचास प्रतिशत से अधिक वोट प्राप्त करेगा। इस व्यवस्था का लाभ यह होगा कि 25–30% वोट लेकर कोई उम्मीदवार विजयी नहीं हो पायेगा। ऐसी स्थिति में वर्ग, जाति, सम्प्रदाय की राजनीति को विराम लगेगा और उम्मीदवारों को पूरे समाज पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ेगा।

हमारे देश में अनेक राजनीतिक समस्याओं के साथ भ्रष्टाचार भी एक समस्या है जिसे अनेक समितियों ने खत्म करने का सुझाव दिया है जिसमें बोहरा कमेटी से लेकर मोइली कमेटी तक सामिल हैं। पत्रिका ने इस समस्या से निजात दिलाने के लिए 'लोकपाल' व्यवस्था की अनिवार्यता बताई है। लोकपाल या 'ओम्बुड्समैन' जैसी संस्था सार्वजनिक

---

1. राजस्थान पत्रिका – 7 दिसम्बर, 1992, पृ. 10
2. राजस्थान पत्रिका – 8 दिसम्बर, 1992, पृ. 6
1. राजस्थान पत्रिका – 9 फरवरी, 1995, पृ. 8

जीवन में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा सकती है। इसके दायरे में बड़े अधिकारियों से लेकर प्रधानमंत्री तक आ जाते हैं। विश्व के एक दर्जन से भी अधिक राष्ट्रों में यह संस्था सफलतापूर्वक कार्य कर रही है।

लोकपाल की स्थापना की प्रथम मांग राजस्थान की धरती से उठी और पत्रिका ने इसे आगे बढ़ाने का कार्य किया। "1963 में राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति ने यह सुझाव दिया था कि भारत में स्केण्डेनेवियन देशों की भांति ओम्बुड्समैन जैसी संस्था की स्थापना आवश्यक है। इसी प्रकार तत्कालीन संसद–सदस्य डॉ. एल.एम. सिंघवी ने भारतीय संसद में पुरजोर यह आवाज उठाई कि भारत में जन अभियोग निराकरण करने के लिए 'ओम्बुड्समैन' जैसी संस्था की स्थापना की जानी चाहिए।"[2] इसकी सर्वप्रथम स्थापना 1809 में स्वीडन में हुई। इसके बाद यह काफी लोकप्रिय संस्था बन गई। राष्ट्रीय स्तर पर बाद में प्रशासनिक सुधार आयोग ने सन् 1967 में अपने एक प्रतिवेदन 'जन अभियोग निराकरण पर प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन' में आयोग ने यह सिफारिश की थी कि भारत में ओम्बुड्समैन जैसी संस्था की स्थापना अति आवश्यक है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान पत्रिका ने राजनीतिक समस्याओं का सामना करने की कोशिश की है और यथा संभव समाधान देने का भी प्रयास किया है। आज से कुछ वर्ष पूर्व चर्चा में रहे 'सूचना अधिकार' आन्दोलन की आवाज भी राजस्थान पत्रिका के माध्यम से ही उठी जो आज जनता के हाथ में बड़े हथियार के रूप में है। "जनता की आवाज नक्कारा–ए–खुदा मानी जाती है। राजमुकुट जो ईश्वरीय आधारों से सुशोभित थे, भी जन आकांक्षा को दबाने पर भू–लुण्ठित हो गए। प्राचीन काल में गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में गण की महत्ता सर्वोपरि थी। प्रजातंत्र में सरकार की भूमिका सेवक के समान होती है। उसका परमदायित्व है कि वह अपने क्रियाकलापों तथा गतिविधियों से अपने स्वामी जनता जनार्दन को अवगत कराता रहे।"[3] सूचना के अधिकार कानून के न होने के हानिकारक और गंभीर प्रणाम हो सकते हैं, पत्रिका ने इस ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित कर जनमत बनाने का प्रयास किया है। पत्रिका ने लिखा है, "सार्वजनिक क्षेत्रों में ऊंचे पदों पर बैठे हुए जन–प्रतिनिधि क्या कर रहे हैं इसकी जनता को जानकारी नहीं है।

---

1. राजस्थान पत्रिका – 25 जून, 1995, पृ. 3
2. राजस्थान पत्रिका – 5 जनवरी, 1991, पृ. 6
3. वही, पृ. 6

साम्प्रदायिक दंगों में मरने वालों की सही संख्या नहीं बताई जाती है और परिस्थितियों पर लौह आवरण डालने का प्रयास किया जाता है। किसी जननेता की असामयिक मृत्यु, गंभीर घटना या घोटाले की उच्चस्तरीय जाँच की मांग उठी तो जांच कमीशन अधिनियम के अन्तर्गत जांच आयोग बैठा दिया जाता है। तत्पश्चात जनता को उस रिपोर्ट के संबंध में कोई जानकारी नहीं दी जाती।"[1] प्रशासन में पारदर्शिता लाने में सूचना अधिकार कानून का बहुत महत्त्व है। सारांशतः हम कह सकते हैं कि पत्रिका व्यापक राजनैतिक सरोकार रखती है जो एक लोकतांत्रिक देश की बहुत बड़ी जरूरत है।

---

1. राजस्थान पत्रिका – 5 जनवरी, 1991, पृ. 6

4.2 पत्रिका और सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार

प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास और संस्कृति होतीं है। इसकी निर्मिति में अनेक कालखण्डों, घटनाओं और महापुरुषों का योगदान होता है। संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है जिसमें उस राष्ट्र की भाषा आचार–विचार, रहन–सहन, रीति–रिवाज और परम्पराएं आ जाती हैं। भारतवर्ष की संस्कृति भी अत्यन्त प्राचीन और गौरवशाली अतीत को अपने में आत्मसात किए हुए है। आज हमारा व्यवहार जैसा है उसके पीछे हमारी संस्कृति का योगदान भी कम नहीं है। अखबार भी इसी तरह से संस्कृति के महत्त्व को नकारकर कुछ भी प्रकाशित नहीं कर सकते। चूंकि आज का दौर संस्कृतियों के घुलन का दौर है जिससे नई संस्कृति का भी जन्म हो रहा है, ऐसे में अखबार अपनी परम्पराओं और गौरवशाली अतीत के खेवनहार हो सकते हैं। राजस्थान पत्रिका अपनी संस्कृति और इतिहास के महत्त्व को समझती है, उसके सरोकारों पर ध्यान देती है। सामाजिक सांस्कृतिक सरोकारों से आशय है अखबार की समाज में भूमिका कैसी है। अख़बार समाज में रूढ़िवादी और संकीर्ण विचारों को बढ़ावा देता है या प्रगतिशील विचारों को। कला, संस्कृति, नृत्य आदि को अखबार कितना महत्त्व देता है, यह उसकी सांस्कृतिक सोच को ही व्यक्त करता है।

किसी भी अखबार के लिए ये मुद्दे महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि कोई भी पत्र अपने इतिहास और संस्कृति से कट कर नहीं जी सकता। पत्रिका पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर इन मुद्दों को उठाती है। इतिहास से हमें प्रेरणा मिलती है, एक गौरव का बोध होता है। प्रत्येक जिज्ञासु व्यक्ति अपने अतीत को जानना चाहता है। समाज में सभी लोगों को पढ़ने–पढ़ाने की सुविधा प्राप्त नहीं है क्योंकि जीवन के अनेक पहलू हैं जिनमें व्यक्ति अपना समय देता है। अखबार एक ऐसा माध्यम है जो अनायास ही अपनी तरफ लोगों को खीचता है, लोगों की जिज्ञासा को शान्त करता है। अब कोई अखबार खबरों के साथ–साथ इतिहास, संस्कृति और कला आदि पर बात करे उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। 'राजस्थान पत्रिका' में इन विषयों पर बल रहता है जिससे वह महत्त्वपूर्ण हो जाता है और पाठक उसे पसन्द करने लगते हैं।

राजस्थान पत्रिका न केवल राजस्थानी संस्कृति बल्कि भारतीय संस्कृति का आईना है। यदि कोई व्यक्ति भारतीय संस्कृति से रूबरू होना चाहता है तो वह राजस्थान पत्रिका की दैनिक प्रति से बहुत–सी जानकारी प्राप्त कर सकता है। राजस्थान के लोक देवता, मेले, त्योहारों के अलावा पत्रिका भारतीय समाज में मनाये जाने वाले लगभग सभी

त्योहारों पर कुछ खास और विशेष पाठकों को देती है। तीज, रक्षा बन्धन, दशहरा, दीवाली, होली आदि सभी प्रमुख त्योहारों पर यहां विशेष पृष्ठ हैं। इन त्योहारों से जुड़ी प्राचीन मान्यताएं, इन्हें कैसे मनायें ? किस समय पूजन करें ? आदि तमाम बातें राजस्थान पत्रिका के माध्यम से सीखी जा सकती हैं। इसी अनोखी विशेषता के कारण राजस्थान पत्रिका में लगातार पाठकों का विश्वास बना हुआ है।

अखबार को लोग अधिक से अधिक तब तक महत्त्व का समझते हैं जब तक दूसरे दिन का अखबार हाथ न लग जाए, लेकिन राजस्थान पत्रिका के विषय में यह बात बिल्कुल उलट है और यही कारण है कि यह अखबार से अधिक एक पत्रिका (मैगजीन) नज़र आती है और अपने नाम को सार्थक करती है। पत्रिका भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम पक्षों, महापुरुषों की जन्म तिथि व पुण्य तिथि, खगोलीय घटनाएं, राशिफल और सामाजिक जागरण के अनेक ऐसे उत्सवों को महत्त्व देती है जिसमें हमारी संस्कृति झलकती है।

राजस्थान पत्रिका में लगातार कई वर्षों तक 'आओ गांव चलें' कॉलम प्रतिदिन छपता रहा जिसमें राजस्थान के एक गांव का पूरा विवरण व इतिहास होता था। पत्रिका के मूर्धन्य पत्रकार श्री बिशन सिंह शेखावत ने इसे शुरू किया। बाद में अन्य पत्रकार साथी भी इस कॉलम से जुड़े। श्री शेखावत ने गांव–गांव में जाकर एक नया सन्देश दिया और राजस्थानियों को ही अपने गांव अपने प्रदेश के बारे में वह जानकारी उपलब्ध करायी जो सामान्यतः लोगों की नज़रों से ओझल थी। इस स्तंभ के माध्यम से एक तरह से राजस्थान के गांवों का इतिहास ही श्री शेखावत जी ने हमारे सम्मुख प्रकट कर दिया।

पत्रिका अखबार के अपने सभी दायित्वों को निभाने के बाद भी सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों पर विशेष ध्यान देती है। यहां राजस्थान की लोक संस्कृति रची–बसी है। यह महत्वपूर्ण कार्य पत्रिका ही कर सकती है क्योंकि यह अपनी माटी की महक को पहचानती है। राजस्थान पत्रिका न केवल राजस्थान में बल्कि इसके बाहर भी राजस्थानियों को एक सूत्र में बांधने का एक माध्यम है। पत्रिका पढ़ने के लिए यहां छात्रों की जो लाईन लगी रहती है वह इसके महत्व को प्रकट करती है। पुस्तकालय में देश–विदेश के सभी अखबार पढ़ने के बाद भी जब तक पत्रिका न पढ़ें अधूरापन–सा लगता है। ऐसा लगता है कि आज कुछ छूट रहा है। मैंने खुद पत्रिका पढ़ने के लिए पुस्तकालय में घंटों इन्तजार किया है।

पत्रिका हमारी धरोहर है। पत्रिका हस्तकला, कुटीर उद्योग, राजस्थानी पेंटिंग, छपाई–रंगाई, मूर्तिकला, काष्ठकला, संगीत, साहित्य, पर्व–त्योहार व मेले आदि समस्त विषयों को अपने में समेटे हुए है। पत्रिका के इन महत्त्वपूर्ण कार्यों से लोगों में एक नई ताजगी और उल्लास भरा है। पत्रिका ने राजस्थान की बहुमूल्य पुरातात्विक सम्पदा को नष्ट होने से बचाने की भी कोशिश की है। 9 सितम्बर, 1991 के अंक में 'राजस्थान की बहुमूल्य पुरातात्विक सम्पदा का कोई धणी धोरी नहीं' नामक लेख महत्त्वपूर्ण है। इसमें पत्रिका ने लिखा है, "जिस पुरातात्विक सम्पदा के लिए राजस्थान को दुनियाभर में जाना जाता है वही अमूल्य धरोहर उपेक्षा के कारण बदहाली का शिकार हो रही है।"[1] आमेर के जगत शिरोमणि मंदिर में दरारें पड़ रही हैं तो वही "महाराणा प्रताप की याद दिलाने वाली हल्दीघाटी का नैसर्गिक सौंदर्य नष्ट हो गया है।"[2] पत्रिका ने शेखावाटी क्षेत्र की हवेलियों के महत्त्व को भी रेखांकित किया है। "शेखावाटी में अनेक शहर और कस्बे हैं जो सैकड़ों वर्षों से पुरातन कला तथा संस्कृति की अनुपम धरोहर संजोये हैं। यहां के सेठ–साहूकारों की हवेलियां रंग–बिरंगे भित्ति चित्रों के कारण देश–विदेश में प्रसिद्ध हैं।"[3] पत्रिका इनके महत्त्व को रेखांकित करती है और इनके संरक्षण की मांग भी उठाती है। पत्रिका की इस महत्ती भूमिका को देखने के बाद लगता है कि यह महज एक अखबार नहीं बल्कि संस्कृति का आईना है और इससे बढ़कर यह एक सामाजिक–सांस्कृतिक आन्दोलन है जो किसी महत् उद्देश्य को लेकर चल रहा है।

3 नवम्बर, 1991 की रविवारीय पत्रिका दिवाली पर्व को समर्पित है। दिवाली पर यह पूरा परिशिष्ट है। दिवाली के माध्यम से हम देखते हैं कि किस प्रकार पत्रिका हमें जानकारी देता है। शुरूआत है 'लक्ष्मी के वाहन उल्लू हैं ?'[4] दिवाली को यहां अनेक दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास किया है। 'धनतेरस की लोकवार्त्ताओं में लक्ष्मी महात्म्य'[5] दीपावली का प्रथम अनुष्ठान दिवस है – धनतेरस। इसे धन्वन्तरि जयन्ती के रूप में मनाया जाता है। लोक मानस ने इस धार्मिक अनुष्ठान को सांस्कृतिकता प्रदान करते हुए इसके

---

1. राजस्थान पत्रिका – 5 सितम्बर, 1991, पृ. 5
2. वही, पृ. 5
3. राजस्थान पत्रिका – 20 अक्टूबर, 1991, पृ. 13–14
4. राजस्थान पत्रिका – 3 नवम्बर, 1991, पृ. 16
5. वही, पृ. 17

महात्म्य को नये बर्तनों की खरीद से जोड़ा है। हमारे यहां लोक विश्वास है कि 'धनतेरस' के दिन लक्ष्मी धन की वर्षा करती हैं और सभी पात्र भर देती हैं।

इसी परिशिष्ट में दिवाली पर बोनस को लेकर एक व्यंग्य छपा है। एक लघु कथा है। दो–तीन छोटी–छोटी कविताएं हैं। इन सब के अलावा सामान्य सी बात दिवाली पर घर का कामकाज कैसे संभाले'[1] की जानकारी भी दी गई है। श्री धन्वन्तरि वंदना छपी है। उत्तम स्वास्थ्य : धन्वन्तरि दिवस का सन्देश के माध्यम से स्वास्थ्यवर्द्धक जानकारी भी उपलब्ध है। साथ में है – 'संभलकर चलाएं आतिशबाजी'[1] का सन्देश। दीप की अराधना और शुभकामना पत्र भेजते समय क्या ध्यान रखें – आदि अनेक बातें है। जो धनतेरस विशेष पृष्ठ पर छपी हैं।

राजस्थान वर्षों से रियासती प्रभाव वाला क्षेत्र रहा है। यहां के समाज में अनेक प्रथाएं अच्छी–बुरी विद्यमान हैं। कुछ प्रथाएं परेशान करने वाली है। जो वक्त के साथ धीरे–धीरे छूट रही हैं, लेकिन देश के अन्य हिस्सों की अपेक्षा आज भी पर्याप्त प्रभाव रखती हैं। इनमें प्रमुख हैं – बाल–विवाह, दहेज–प्रथा, महिला शिक्षा का अभाव, दलित विषयक प्रश्न, देवी प्रकोप का भय, सती का महिमा मण्डन आदि।

राजस्थान में रजवाड़ों के समय सती प्रथा का खूब प्रचलन था जिसमें पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी को भांग आदि नशीली वस्तुएं पिला कर पति के साथ जिंदा जलने के लिए प्रेरित किया जाता था। जो औरत ऐसा नहीं करती थी उसे जबरदस्ती भी जिंदा जला दिया जाता था। दो दशक पूर्व राजस्थान में ही 'दिवराला सती कांड' से यह परम्परा फिर चर्चा में आ गई थी। आज कोई महिला सती नहीं होती फिर भी सती की महिमा का बखान बदस्तूर जारी है और वह लोगों को कई प्रकार से प्रभावित कर रहा है। राजस्थान पत्रिका ने सती–संस्कृति के ख़िलाफ वैचारिक चेतना का प्रसार नहीं किया। इसी कारण वरिष्ठ पत्रकार रामशरण जोशी राजस्थान पत्रिका की वैचारिक भूमिका को अपेक्षित रूप से खरा नहीं पाते। जोशी जी कहते हैं कि, "सामंती और महाजनी संस्कृति के कारण ही राजस्थान में सती–संस्कृति आज भी फल–फूल रही है।"[3] इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता की कानूनन निषेध के बावजूद सती महिमा मंडन अभी जारी है। पत्रिका ने इसके

---

1. राजस्थान पत्रिका – 3 नवम्बर, 1991, पृ. 17
2. वही, पृ. 17
3. रामशरण जोशी – उद्धृत, अपने गिरेबार में, पृ. 76

खिलाफ कोई संगठित मुहिम नहीं चलाई। इसकी एक वजह यह हो सकती है कि यह लोगों की चेतना का विषय ही नहीं बन पाया। दूसरा राजपूत नेता इसके खिलाफ नहीं बल्कि इसके समर्थन में सड़कों पर निकलने तक परहेज नहीं करते।

'आओ गांव चलें' स्तम्भ के माध्यम से हम सती के भय की अनेक कथाएं देखते हैं और इस तरह की कथाएं गांव–गांव में चल रही हैं और लोगों के ज़ीवन और व्यवहार को प्रभावित कर रही हैं। "ग्राम सावली द्दू तहसील में मोजमाबाद के पास स्थित है। पूरे गांव में मुरड़–गार के कच्चे मकान हैं। यह पहला ही गांव देखने में आया जहां के लोग पक्के मकान बनाकर रहना चाहते है।, पर सती के श्राप से भस्म होने से भयभीत हैं। इस जमाने में हिम्मत कर एक परिवार ने पक्का मकान बनाना शुरू किया तो मकान आधा–अधूरा बनते ही बनाने वाले की मृत्यु को गई। अब किसी को हिम्मत नहीं हो रही है कि इस विश्वास को कैसे डिगायें।"[1]

गांव वालों का कहना है कि, "सन् 1744 में सावली के महासिंह एवं महरामसिंह नाथावत मराठों से युद्ध में लड़ते हुए मारे गये थे। महासिंह व महरामसिंह काका–भतीजा थे। दोनों की युद्ध में मृत्यु का समाचार सुनकर इनकी पत्नियां भी गांव में जलकर सती हो गई थीं। ये दोनों सतियां बुआ एवं भतीजी थीं।"[2] बिशन सिंह शेखावत जी आगे लिखते हैं –

"गांव वालों का कहना है कि अग्निस्नान करते हुए इन दोनों महिलाओं ने एक नाटानी खण्डेलवाल महाजन को अनाज से भरे हुए 'खास' गरीबों को बांटने के लिए कहा था किन्तु जागीरदारों के इस कामदार ने अनाज बांटने की तरफ ध्यान नहीं दिया। इस पर सती ने श्राप दिया बताया कि इस गांव में कोई पक्का मकान नहीं बनायेगा। इस घटना को दो सौ चौंसठ वर्ष हो गये पर किसी ने अभी तक पक्का मकान नहीं बनाया।"[3]

इसी प्रकार गांवों में दूसरी लोक मान्यताएं और विश्वास भी खूब प्रचलित हैं। मसलन सावली गांव में ही तेजाजी महाराज की मान्यता से सांप काटे का झाड़ा दिलवाया जाता है। "गांव के बाहर तालाब की पाल पर तेजाजी का मन्दिर है। वहां दो लड़के सांप

---

1. राजस्थान पत्रिका – 5 जुलाई, 1991, पृ. 7
2. राजस्थान पत्रिका – 5 जुलाई, 1991, पृ. 7
3. वही, पृ. 7

काटे का झाड़ा दिलवाने आये थे। दोनों के हाथों में सांप डस गया था। एक बैल भी सांप काटे जाने के कारण तेजाजी के थान पर लाये थे। यहां काफी संख्या में सांप काटे लोग आते हैं। डाक्टर इस गांव में अभी नहीं पहुंचा। कच्चे मकान, छान–झोंपड़ों तथा खेत खलिहानों में सांपों का डर बना ही रहता है। कुछ लोग झाड़े से ठीक भी हो जाते हैं कुछ नहीं भी।"[1]

पत्रिका व सरकार की यह जिम्मेदारी बनती है कि लोगों में वैज्ञानिक चेतना का विकास करें और अंधविश्वासों पर ध्यान न दें। इसमें राजस्थान पत्रिका अपनी भूमिका निभा सकती है। लोगों को जागरूक करने का कार्य अखबार नहीं तो और कौन करेगा ?

राजस्थान के गांवों की एक विशेष समस्या है – बाल–विवाह। राजस्थान पत्रिका के 'आओ गांव चलें' कॉलम के माध्यम से ज्ञात होता है कि लगभग आधे से अधिक गांव इस समस्या से ग्रसित हैं। दौसा जिला मुख्यालय के पास स्थित एक गांव बीगास के बारे में बिशन सिंह शेखावत कहते हैं कि यहां लोगों में चेतना आने लगी है। इसका कारण है सिर्फ जिला मुख्यालय के निकट होना। फिर भी यहां स्थिति इस प्रकार है – "गूजरों में बाल–विवाह काफी प्रचलित है, किंतु अब यहां धीरे–धीरे विवाह की उम्र बढ़ती जा रही है। पर सरकार की इक्कीस वर्ष उम्र के बाद विवाह यहां शायद ही किसी का होता हो, इस उम्र से पहले पहले ही विवाह करना पड़ता है। मृत्यु भोज भी विशेष नहीं होते। लोगों में पाखण्ड, गलत खर्च के प्रति विचार एवं चिन्तन शुरू हुआ है।"[2] इसका कारण शिक्षा का प्रसार है। कहने का तात्पर्य है कि राजस्थान के गांव अब नई करवट ले रहे हैं।

इसी प्रकार प्रसंगवश स्तंभ के माध्यम से 8 मई 1992 को पत्रिका ने इस प्रकार कुछ रिपोर्टिंग की है – "राजस्थान में इस वर्ष भी आखातीज के अबूझ सावे पर सैकड़ों–हजारों बच्चों का विवाह हुआ है। राजधानी जयपुर के निकटवर्ती गांवों से लेकर दूरदराज तक के इलाकों में कितने नाबालिक बच्चों व बच्चियों को विवाह के पवित्र बंधन में बांध दिया जिनमें अभी पूरी समझ भी नहीं है।"[3]

इसी प्रकार अजमेर जिले के दिलवाड़ी नसीराबाद से किशनगढ़ जाने वाली बाईपास सड़क पर बसा हुआ है। यहां "आखातीज पर बाल विवाह खूब होते हैं। बाल विवाह

---

1. राजस्थान पत्रिका – 5 जुलाई, 1991, पृ. 7
2. राजस्थान पत्रिका – 22 अप्रैल, 1992, पृ. 7
3. राजस्थान पत्रिका – 8 मई 1992, पृ. 6

जितने अजमेर जिले के गांवों में होते हैं उतने अन्य जिलों में बहुत कम होते हैं। बाल–विवाह के कारण ही थोड़े से बड़े होते ही अपने परिवार की जिम्मेदारी कंधों पर आ पड़ती है।"[1] शेखावत जी आगे बताते हैं कि, "दिलवाड़ी में एक दो परिवारों को छोड़कर किसी घर में महिला पढ़ी लिखी नहीं हैं। महिलाओं को पढ़ाने का अभी चिन्तन भी शुरू नहीं हुआ। छोटी–छोटी बच्चियों का विवाह कर उन्हें पराई कर देते हैं। पढ़े लिखे परिवार भी कम हैं।"[2]

आओ गांव चलें के क्रम में अजमेर के ही 'आखरी गांव' में बाल विवाह की स्थिति इस प्रकार है – "इस गांव में करीब करीब सभी बालक–बालिकाओं के विवाह बहुत छोटी उम्र में ही हो जाते हैं। इन बालकों को यह भी जानकारी नहीं कि विवाह किसे कहते हैं। स्कूल में चालीस बच्चे नियमित हैं। यहां जानकारी मिली की प्रथम कक्षा का सुरेशचन्द्र विवाहित है। इसकी उम्र आठ वर्ष है। दो वर्ष पहले इसका विवाह रचा गया था। पहली कक्षा का बालक सांवरिया की पांच वर्ष की उम्र में शादी हो गयी थी। देवाराम गूजर, भैरों गूजर, नरेन्द्र कुमार नाम के लड़कों ने भी स्कूल के रिकार्ड में अपना विवाह होना लिख रखा है।"[3] इस प्रकार यहां अनगिनत गांव हैं जहां बाल–विवाह की खबरें हैं। दुर्भाग्य की बात है कि यह कार्य आज भी चल रहा है। कानून का डर जरूर है लेकिन लोगों में जागरुकता न होने की वजह से कानून यहां काम नहीं करता। राजस्थान पत्रिका इस विषय में प्रशंसा की पात्र है कि इसने बाल–विवाह के विरोध में एक जनमत निर्माण का कार्य किया है और धीरे–धीरे लोगों में इस विषय पर चेतना का संचार हो रहा है।

राजस्थान के शहरों की अपेक्षा गांवों में दहेज का प्रचलन नहीं के बराबर है लेकिन यह अब शुरू हो गया है। जयपुर जिले के दूदू तहसील में धमाणा गांव है जिसकी चर्चा 'आओ गांव चलें' कॉलम के तहत 8 जुलाई 1990 को पत्रिका में हुई है। लेखक बिशनसिंह शेखावत इस गांव को दहेज से मुक्त बताते हैं लेखक ने गांव के एक व्यक्ति से पूछा कि "लड़की की शादी में दहेज में क्या देते हैं तो कहा – "एक केरड़ी दे दे"। शहरों की तरह दहेज की परम्परा अभी नहीं चली।"[4] लेकिन अब दहेज की शुरुआत गांवों में भी होने लगी है। शेखावाटी क्षेत्र के गंगापुरा गांव के बारे में लेखक ललित शर्मा बताते हैं कि –

---

1. राजस्थान पत्रिका – 1 जनवरी, 1993, पृ. 7
2. वही, पृ. 7
3. राजस्थान पत्रिका – 13 फरवरी, 1993, पृ. 7
4. राजस्थान पत्रिका – 8 जुलाई, 1990, पृ. 7

"हाल के पांच–सात वर्षों में शादी–विवाह में दिए जाने वाले दहेज का लेन–देन तेजी से बढ़ा है। किशनलाल के अनुसार पांच वर्ष पहले तक 'समठूणी' (विवाह की रस्म) में इक्कीस सौ रुपये बहुत माने जाते थे लेकिन अब यह राशि ग्यारह हजार से इक्कीस हजार रुपये जा पहुंची है।"[1]

स्पष्ट है कि अभी भी यह रकम बहुत अधिक नहीं है। यह एक शुभ समाचार है कि राजस्थान के दूर–दराज के गांव अभी दहेज से ज्यादा प्रभावित नहीं हैं लेकिन यह प्रथा तेजी से फैल रही है। पत्रिका को चाहिए कि दहेज प्रथा को नष्ट करने के लिए जनमत का निर्माण करे।

जाति व्यवस्था भारतीय समाज में एक अभिशाप का रूप धारण कर लेती है जब नीची समझी जाने वाली जातियों पर जुल्म होता है। पत्रिका ने यथासंभव इन घटनाओं पर रिपोर्टिंग की है। अगस्त 1991 का आन्धप्रदेश हरिजन हत्या काण्ड एक नृशंस हत्या काण्ड था। राजस्थान पत्रिका ने इस समय सम्पादकीय के माध्यम से अपने विचार रखे, "सही बात तो यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में हरिजनों के साथ होने वाले जुल्मों का कारण कुल मिलाकर आर्थिक है। ... आंध्रप्रदेश के इस गांव में हरिजनों की हत्या के जो कारण सामने आये हैं, वे तो बहुत गम्भीर हैं। दो युवकों में एक मामूली से विवाद ने ऐसा विकराल रूप धारण कर लिया, जिसमें 20–30 हरिजनों की हत्या कर दी गई।"[2] इस नृशंस हत्या कांड की जितनी भी निंदा की जाए वह कम है।

इसके अलावा आये दिन व्यवहार में दलितों को भेदभाव और जातिपरक उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। छुआछूत ग्रामीण भारत की आज भी सच्चाई है। 'आओ गांव चलें' स्तंभ के माध्यम से सवाईमाधोपुर जिला के जयसिंहपुरा गांव में हो रहे दलित उत्पीड़न दर्दनाक हैं। पत्रिका संवाददाता शिवकेश इस गांव में जाकर शोषण का एक विचित्र नमूना देखते हैं। शिवकेश ने लिखा है कि, "खण्डार के दुकानदार मुसलमानों का दूध भले खरीद लें हम लोगों का दूध नहीं खरीदते। घी भी नहीं। हमें अछूत समझते हैं। एक दूसरा आदमी हमारे यहां से तीन–चार रुपए लीटर में दूध खरीदता है। वही दूध जाकर ऊँचे दाम पर बाजार में बेच देता है। लोग क्या जाने कि वह हमारे ही यहां का दूध है।"[3] शोषण का यह एक नायाब तरीका है। मेहनत–मजदूरी से भी कोई अपना भाग्य बदलना चाहे तो इस

---

1. राजस्थान पत्रिका – 6 अप्रैल, 1994, पृ. 7
2. राजस्थान पत्रिका – 12 अगस्त, 1991, पृ. 6
3. राजस्थान पत्रिका – 20 दिसम्बर, 1993, पृ. 7

तरह की सामाजिक समस्या पीछा नहीं छोड़ती। इस तरह की समस्याएं हालांकि अभी कम हुई हैं लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में इसके अलावा भी तरह–तरह के भेदभाव मानव–मानव में बने हुए हैं। पत्रिका ने यथासंभव इन प्रसंगों पर चर्चा की है और लोगों व प्रशासन का ध्यान आकर्षित किया है।

राजस्थान पत्रिका इन उपरोक्त सामाजिक सरोकारों के साथ धर्म और संस्कृति विषयक मुद्दों पर चर्चा का एक अच्छा सुअवसर प्रदान करती है। इसका कारण यह है कि स्वयं पत्रिका के संस्थापक–संपादक कुलिश जी एक ख्याति प्राप्त वेद विद्वान थे और भारतीय संस्कृति में उनकी गहरी आस्था थी। वेदों पर उनका व्यापक और गहन अध्ययन है। कुलिश जी ने वेद को देश की एकता का उत्तरदायी ठहराया और इसे राष्ट्र की आत्मा तक कहा है। 24 सितम्बर 1991 के व्याख्यान में कुलिश जी ने कहा कि, "वेद ही इस देश की आत्मा है। यह देश शताब्दियों से अनगिनत आघातों–प्रत्याघातों के बाद भी अपने सम्पूर्ण वर्चस्व के साथ जिस स्थिरता, दृढ़ता और जीवट के साथ खड़ा है, वेद की शक्ति ही इसका आधार है।"[1] उपरोक्त विचार साहित्य अकादमी दिल्ली के सभागार में 'वेदों की वैज्ञानिकता' विषयक व्याख्यान में कुलिश जी ने रखे।

कुलिश जी ने 26 जनवरी, 1991 के गणतंत्र दिवस परिशिष्ट में भी वेद की अर्थवत्ता पर विचार करते हुए कहा है कि, "हमारी लोक नीति, सेनापत्य, राजदण्ड, समाजनीति, नागरिक नीति, राष्ट्र नीति, अर्थ नीति, मोक्ष नीति, शिल्प, कला, वाणिज्यादि सम्पूर्ण कार्यकलाप का आधार वेद था। दुर्भाग्य का प्रसंग है कि आज स्वतंत्र सार्वभौम भारत के संविधान तक में वेद का समावेश मात्र नहीं है।"[2] कुलिश जी ने वेदों को साम्प्रदायिक समझने वालों को भी अल्पज्ञानी ही माना। यह तो ठीक है कि आज की पीढ़ी बिना पढ़े–लिखे अपने पूर्वाग्रहों के आधार पर निर्णय कर लेती है जो गलत है। हमें वेदों का ज्ञान प्राप्त कर उसके सार से जीवन को सफल बनाना चाहिए और बातें अव्यावहारिक लगें तो उन्हें त्याग देना चाहिए।

राजस्थान कला और संस्कृति के विषय में एक समृद्ध परम्परा रखता है। शेखावाटी क्षेत्र में भित्ति चित्रों से युक्त सुन्दर हवेलियां पर्यटकों का मन मोह लेती हैं। "झुन्झुनूं एवं सीकर जिलों के रामगढ़, नवलगढ़, मंडावा, महनसर, फतेहपुर तथा लक्ष्मण

---

1. राजस्थान पत्रिका – 24 सितम्बर, 1991, पृ. 12
2. राजस्थान पत्रिका – 26 जनवरी, 1991, पृ. 13–14

श्रद्धालुओं और पुरातत्वविदों के लिए चिन्ता का विषय होनी चाहिए। कोई 350 वर्ष पूर्व बनी शिल्प और स्थापत्य कला की यह दुर्लभ धरोहर अपना मूल स्वरूप खोती जा रही है।"[1]

हमारी यह जिम्मेदारी बनती है कि हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर का मूल्य समझें और उसे नष्ट होने से बचाने का हर संभव प्रयास करें ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए हम इन्हें बचाकर रख सकें।

---

1. राजस्थान पत्रिका – 1 अगस्त, 1992, पृ. 6

4.3 पत्रिका और क्षेत्रीय आन्दोलन

जन आन्दोलनों की दृष्टि से राजस्थान काफी अग्रणी रहा है। अरुणा राय व उनके पति बंकर राय व अन्य सहयोगियों ने अजमेर के 'तिलोनिया' गांव को अपने संघर्ष का केन्द्र बनाकर किसानों–मजदूरों के हक की लड़ाई शुरू की। इन्होंने 'मजदूर–किसान शक्ति संगठन' नाम से आन्दोलन शुरू किया। इसी संगठन ने सर्वप्रथम सूचना का अधिकार की मांग की। मजदूरों की मजदूरी दिलाने में इस संगठन ने अहम् भूमिका अदा की। सरकारी अफसरों से मिलकर मजदूरों की बात सामने रखी तो अफसरों ने गोपनीयता के नाम पर सूचना देने से इनकार किया। इस संगठन ने हार नहीं मानी और मजदूरों व किसानों को साथ लेकर अपने प्रयास करते रहे। इन्हें प्रारम्भिक सफलता तब मिली जब तत्कालीन गहलौत सरकार ने इनकी मांगों पर सकारात्मक रूख अपनाया, साथ ही गहलौत सरकार ने सूचना का अधिकार कानून लागू भी किया। इसके बाद केन्द्र सरकार ने भी इसी प्रकार का कानून बनाया।

'मजदूर–किसान शक्ति संगठन' किसान व मजदूरों को जागरूक कर उनके हक की लड़ाई लड़ने के लिए तैयार करने वाला आन्दोलन है। राजस्थान पत्रिका ने यथासंभव सूचना का अधिकार कानून पर जनमत बनाने का प्रयास किया। पत्रिका ने लिखा कि, "प्रजातंत्र में सरकार की भूमिका सेवक के समान होती है। उसका परमदायित्व है कि वह अपने क्रियाकलापों तथा गतिविधियों से अपने स्वामी जनता जनार्दन को अवगत करता रहे।"[1] सूचना का अधिकार लोकतंत्र की पहली आवश्यकता होनी चाहिए क्योंकि गोपनीयता की आड़ में शोषण और भ्रष्टाचार फलता–फूलता है।

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 19 से 22 में नागरिकों को अपना व्यक्तित्व संवारने के लिए स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया है। समाज की सुरक्षा, नैतिकता तथा लोक व्यवस्था के आधार पर लगाए गए निर्बन्धन अगर निषेध की सीमा का अतिक्रमण करते हैं तो उन्हें न्यायालयों द्वारा अवैध घोषित कराया जा सकता है। विनोद सुरोलिया ने 5 जनवरी 1991 के पत्रिका के सम्पादकीय पृष्ठ पर छपे अपने लेख में बताया है कि, "1923 में अंग्रेजों ने साम्राज्यवाद की जड़ों को सींचने के लिए जो सरकारी गोपनीयता का कानून बनाया था वह

---

1. राजस्थान पत्रिका – 5 जनवरी, 1991, पृ. 6

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ज्यों का त्यों लागू है। इस कानून ने लोकसेवकों को इतना भयातुर कर दिया है कि वे छोटी–छोटी बातों को भी जनता के सामने रखने का साहस नहीं जुटा पाते।"[1]

आज स्थिति यह है कि किसी भी कानून के अन्तर्गत अधिकारी के लिए यह बाध्यता नहीं है कि वह अशिक्षित तथा गरीब लोगों को उन लाभकारी योजनाओं से अवगत करायें जो उनके लिए बनाई गई हैं। अतः स्पष्ट है कि सूचना का अभाव बहुत बड़ा दमनकारी कार्य है। सौभाग्य की बात है कि 'मजदूर–किसान शक्ति संगठन' और राजस्थान पत्रिका की आवाज पर इस विषय में भारत सरकार द्वारा एक सशक्त कानून बन चुका है जो शोषित व पीड़ित जनता के हाथ एक बड़ा कानूनी हथियार है।

किसान–मजदूरों के हक की लड़ाई को राजस्थान पत्रिका ने एक आन्दोलन के रूप में आगे बढ़ाया है। जहां कहीं किसानों व मजदूरों का हक मारा गया वहां पत्रिका अपने सम्पादकीय व स्थाई स्तंभों के माध्यम से इनकी आवाज सरकार तक पहुँचाई है।

राजस्थान पत्रिका 'कड़वा–मीठा सच' नाम से एक कॉलम छापती रही है जिसमें अक्सर किसानों की भी समस्याएं सामने आती हैं। 2 जुलाई 1991 के अंक में करणीदान सिंह राजपूत ने सिंचाई विभाग की मनमानी और उससे होने वाली किसानों की तबाही का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। श्री राजपूत ने लिखा है कि, "सिंचाई विभाग का कोई अधिकारी कब किसका पानी बंद करके खड़ी फसल को उजाड़ दे, यह कोई नहीं जान सकता। वे रुपया लेकर चाहे जिसका पानी गैरकानूनी ढंग से बांध देते हैं और पैसा बटोरने के लिए जब चाहे पानी कम कर देते हैं या काट देते हैं, फिर पानी बंधवाने किसान भागता फिरता है, तब तक लाखों की फसल उजड़ चुकी होती है।"[2]

इसी प्रकार पत्रिका में सिंचाई विभाग के अधिकारियों की मनमर्जी का वृतांत लगातार छपता रहता है। श्रीगंगानगर में नकली खाद व कीटनाशक दवाओं की धड़ल्ले से बिक्री हो रही है। "खाजूवाला में डी.ए.पी. की नकली खाद पकड़ी गई थी, लेकिन कृषि विभाग ने कोई कार्यवाही नहीं की।"[3] प्रसंगवश स्तंभ में यह साफ लिखा है कि नकली माल पर विक्रेता को पचास प्रतिशत मुनाफा मिल जाता है इसलिए अधिकारियों पर यह आरोप भी लगाया जा रहा है कि वे कमीशन खाकर इस अवैध धंधे को प्रोत्साहित कर रहे हैं। इसी

---

1. राजस्थान पत्रिका – 5 जनवरी, 1991, पृ. 6
2. राजस्थान पत्रिका – 4 जुलाई, 1991, पृ. 7
3. राजस्थान पत्रिका – 2 अगस्त, 1993, पृ. 8

प्रकार इन्दिरा नहर के पानी के दोषपूर्ण वितरण की बातें भी पत्रिका के माध्यम से प्रशासन तक पहुँचती रहती है।

राजस्थान में इन्दिरा गांधी नहर से गंगानगर और हनुमानगढ़ जिले प्रारम्भ में सर्वाधिक लाभान्वित हुए लेकिन कुछ ही वर्षों में 'सेम' की समस्या ने उन्हें बेघर कर दिया। नहर के आसपास के गांव पूरी तरह जलमग्न होकर बर्बाद हो गए। पत्रिका ने इस मुद्दे को लगातार उठाया तब भी किसी ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया। अमरपाल सिंह वर्मा ने 'कड़वा–मीठा सच' स्तंभ के माध्यम से इस समस्या पर कई बार प्रकाश डाला है। हालात इस कदर खतरनाक हो गये हैं कि, "सेम ने इस क्षेत्र की हजारों बीघा उपजाऊ भूमि बेकार कर दी है। अनेक गांवों को भी उजाड़ दिया है। कभी इस क्षेत्र की जमीन सोना उगलती थी किन्तु अब यहां खेतों में लहलहाती फसलों की जगह गहरे दलदल ने ले ली।"[1]

हालात इस कदर खराब होते जा रहे हैं कि, "खेतों में बनी ढाणियां गिर गईं और अनेक मकान धराशायी हो गए। बहुत से मकान अभी भी खतरे में हैं। सिलवाला के 70 वर्षीय बुजुर्ग हरदेव सिंह रुंआसा होकर बताते हैं कि उनकी 20 बीघा जमीन पूरी तरह बर्बाद हो गई है। पिछले सात सालों से जमीन में दाना तक नहीं हुआ है। अब हरदेव सिंह का परिवार अन्य किसानों के यहां मजदूरी करने को विवश है।"[2] किसान से मजदूर बनने की यह कथा बहुत ही दारुण है। किसान से मजदूर बनने की यह कथा सिर्फ इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र की ही नहीं है बल्कि दूसरे अनेक क्षेत्रों में अकाल और छोटी होती जोतों के कारण भी किसानी का सम्मानजनक कार्य मजदूरी में परिवर्तित हो रहा है। बिशनसिंह शेखावत ने 'आओ गांव चलें' के माध्यम से दौसा जिले के 'पीपलकी' गांव की दशा भी कुछ इसी तरह की बताई है, और यह सिर्फ पीपलकी अकेला गांव नहीं है। ऐसे हजारों गांव मौजूद हैं। शेखावत जी कथात्मक अन्दाज में इस समस्या को इस तरह बयां करते हैं, "गांव के अरजन तथा धर्मसिंह गूर्जर के पास एक–एक बीघा जमीन रह गई है। खेत में मैं जिस खाट पर बैठा बबूल की छाया में बात कर रहा था, उसी समय जयपुर में मजदूरी कर एक गूजर बाप–बेटा भी आ गए थे। उनके चेहरे गांव वाले खेतीहर जैसे नहीं रहे। बाप–बेटा दोनों पत्थर–चूने की मजदूरी करने के लिए मजबूर हो गए हैं।"[3]

---

1. राजस्थान पत्रिका – 15 अगस्त, 1991, पृ. 5
2. वही, पृ. 5
3. राजस्थान पत्रिका – 13 अप्रैल, 1993, पृ. 7